

भाकपा(माले) के 9<sup>वें</sup> महाधिवेशन  
द्वारा पारित

# प्रस्ताव

मजदूर वर्ग आन्दोलन  
कृषि व अन्य ग्रामीण संघर्ष  
महिला आन्दोलन  
छात्र-युवा आन्दोलन  
पंचायती राज संस्थाओं में हस्तक्षेप  
शहरी कामकाज  
पर्यावरण संरक्षण एवं जन-केन्द्रित विकास  
जनता की प्रगतिशील संस्कृति व आधुनिक मीडिया



बिरसा नगर (रांची)  
2-6 अप्रैल 2013



भाकपा(माले) के 9<sup>वें</sup> महाधिवेशन  
द्वारा पारित

# प्रस्ताव

---

मजदूर वर्ग आंदोलन.....	5
कृषि एवं अन्य ग्रामीण संघर्ष .....	29
महिला आंदोलन.....	43
छात्र-युवा आंदोलन .....	69
पंचायती राज संस्थाओं में हस्तक्षेप.....	79
शहरी कामकाज .....	85
पर्यावरण संरक्षण व जन-केन्द्रित विकास .....	93
संस्कृति और आधुनिक मीडिया .....	109

---

बिरसा नगर (रांची)

2-6 अप्रैल 2013

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मावर्सवादी-लेनिनवादी)



# मजदूर वर्ग आंदोलन संदर्भ, कार्यभार और अवसर

1. दुनिया भर में नवउदारवादी शिकार पर निकली आदमखोर पूंजी ने विश्व के आर्थिक संकट से निजात पाने के नाम पर श्रम पर चौतरफा हमला तेज कर दिया है। हमारे देश में यह नए-पुराने तमाम रूपों में प्रकट हो रहा है : रोजगार में कटौती, छंटनी, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीमों के नाम पर जबरिया सेवानिवृत्ति, वेतनजाम, वर्क-लोड और काम के घंटों में बढ़ोतरी, डाउनसाइजिंग, स्थायी अथवा बारहमासी किस्म के कामों में ठेकेदारी और आउटसोर्सिंग, यूनियनों को तोड़ना और औद्योगिक लोकतंत्र का हरण— ये तो बस कुछ नमूने हैं।

2. भारतीय राज्य, जिसमें न्यायपालिका भी शामिल है, आर्थिक सुधार और वृद्धि के नाम पर तमाम तरह के मजदूर विरोधी नियम-कानून बनाकर, मजदूर-विरोधी न्यायिक फैसलों के जरिए, नए औद्योगिक केन्द्रों में यूनियन-विहीन जोन बनाकर, सरकारी और निजी संस्थानों में श्रमिक संघर्षों का तीखा दमन करके शोषण-उत्पीड़न को ही बढ़ावा दे रहा है। बिना किसी अपवाद के कारपोरेट मीडिया बड़े उद्योगों की धुन पर नाच रहा है और पूरी कर्तव्यनिष्ठा के साथ हड़तालों तथा ट्रेड यूनियनों को देश की समृद्धि में सबसे बड़ी बाधा बता रहा है।

3. भारत के मजदूर और कर्मचारी कारखाने या कार्यस्थल पर, उद्योग और देश के पैमाने पर इन हमलों का पूरी दृढ़ता के साथ प्रतिरोध कर रहे हैं। हाल के वर्षों में असंगठित मजदूरों और ठेका कामगारों में— जो हमारी श्रम शक्ति का सबसे बड़ा हिस्सा हैं और जिनमें अच्छी संख्या में महिला श्रमिक हैं— नई

जुझारू चेतना दिखाई पड़ी है। इसी दौरान, उदीयमान 'इंडिया इन्कारपोरेटेड' के शोपीस ऑटो उद्योग में स्थायी और ठेका मजदूरों का एकताबद्ध अनुकरणीय संघर्ष हुआ है, और साथ ही केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों द्वारा संयुक्त रूप से संगठित अत्यंत सफल औद्योगिक कार्यवाहियां और राजनीतिक अभियान भी हुए हैं। विश्व सर्वहारा का भारतीय दस्ता ग्रीस, स्पेन, दक्षिण अफ्रीका और अन्य देशों के मजदूरों द्वारा दिखाए गए रास्ते पर लगातार आगे बढ़ रहा है। यह रास्ता कठिन चुनौतियों के साथ-साथ नवउदारवाद के फैलते संकट द्वारा पेश की गई बड़ी संभावनाओं से भी भरपूर है।

4. 20-21 फरवरी 2013 की दो-दिवसीय अखिल भारतीय आम हड़ताल ने भारतीय शासक वर्गों के नवउदारवादी आक्रमण के खिलाफ मजदूर वर्ग की कार्यवाही में नई ऊंचाई को प्रदर्शित किया है। देश के तमाम राज्यों और सेक्टरों के 10 करोड़ से भी अधिक मजदूरों ने हड़ताल में भागीदारी की। हड़ताल को लगभग सभी प्रमुख औद्योगिक केंद्रों और वित्तीय सेक्टरों में अच्छा समर्थन मिला। दिल्ली और मुम्बई में परिवहन सेक्टर के हड़ताल के बाहर रहने के चलते जनजीवन अपेक्षाकृत सामान्य रहा जबकि समूचे उत्तर भारत में सार्वजनिक परिवहन बंद रहा। हमारी पार्टी और केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संगठन ने हड़ताल के समर्थन में कामगार जनता को गोलबंद करने में अनुकरणीय भूमिका अदा की- उदाहरण के लिए, तमिलनाडु में आम हड़ताल के आह्वान और मांगों को लोकप्रिय बनाने के लिए तथा मजदूरों के मुद्दों को हल करवाने के लिए राज्य की विधान सभा का विशेष सत्र बुलाने की मांग पर हड़ताल की तैयारियों के क्रम में राज्य-स्तरीय यात्रा संगठित की गई थी। कई क्षेत्रों में, उल्लेखनीय तौर पर बिहार और पश्चिम बंगाल में और झारखंड के कुछ हिस्सों में, व्यापक जन समर्थन के साथ हड़ताल पूर्ण सफल रही। लेकिन राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में मजदूर वर्ग के भीतर असंतोष और लोकप्रिय प्रतिरोध की मजबूत होती भावना को कुचलने की कोशिश में, राज्य मशीनरी ने नोएडा में आम मजदूरों और ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं पर दमन ढाया, ट्रेड यूनियन व पार्टी कार्यालयों पर छापे मारे और झूठे इल्जामों में पार्टी की दिल्ली राज्य कमेटी के सदस्य का. श्याम किशोर व सीटू के एक नेता समेत बहुत से मजदूरों व आम लोगों को गिरफ्तार किया गया। हरियाणा के अंबाला डिपो में हड़ताल के दौरान एटक से जुड़े एक परिवहन मजदूर नेता की मृत्यु हो गई। हड़ताल के कई हफ्तों बाद भी, नोएडा के साथी जेल में हैं और उन्हें जमानत भी नहीं दी गई है।

भारत के विकास की गाथा :

फायदा किसका, नुकसान किसका ?

5. 1990 के दशक के मध्य से लेकर 2000 के दशक के दौरान, विनिर्माण (मैन्युफैक्चरिंग) क्षेत्र में थोड़े से समय के लिये जो वृद्धि देखी गई (जो अब लगातार गिरती जा रही है) वह श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि के बल पर हुई थी। लेकिन श्रमिकों को इस के फल से वंचित कर दिया गया। 1980 के दशक में विनिर्माण के क्षेत्र में हुए शुद्ध वर्धित मूल्य (वैल्यू ऐडेड) का 30 प्रतिशत हिस्सा मजदूरी का था, जो 1990 के दशक में घटकर 20 प्रतिशत हो गया और 2008-09 में यह अब तक के न्यूनतम स्तर 10 प्रतिशत पर पहुंच गया है। तब कोई आश्चर्य की बात नहीं कि शुद्ध वर्धित मूल्य में मुनाफे का हिस्सा जो 1980 के समूचे दशक में 20 प्रतिशत था, वह 1990 के दशक में 30 प्रतिशत को पार कर गया और 2008 में कल्पनातीत ढंग से 60 प्रतिशत तक पहुंच गया। सेवा क्षेत्र की भी यही कहानी है। यहां पर भी शुद्ध वर्धित मूल्य में मजदूरी की हिस्सेदारी 1980 के दशक में 70 प्रतिशत से अधिक थी, जो 2009 आते-आते घटकर 50 प्रतिशत से कम हो गई, जबकि मुनाफे का अंश 1990 के दशक में 30 प्रतिशत से बढ़कर 2004-05 के बाद 50 प्रतिशत से अधिक हो गया।

6. जहां वास्तविक मजदूरी या तो अवरुद्ध है, या फिर घटी है, वहीं लगभग हर कंपनी के उच्च प्रबंधन ने अपनी तनख्वाहों व पद के साथ जुड़ी अन्य सुविधाओं में भारी वृद्धि कर ली है। 1990 के दशक तक प्रबंधन-कर्मियों का वेतन मजदूरों के वेतन का करीब दो गुना हुआ करता था, लेकिन उसके बाद वह तेजी से बढ़ता गया और 2008 आते-आते मजदूरों के वेतन का 4.3 गुना हो गया। सीईओ (मुख्य कार्यकारी अधिकारी) बेहिसाब ऊंची-ऊंची तनख्वाहें ले रहे हैं— कुछ तो 10 लाख रुपए प्रतिदिन से ज्यादा वेतन ले रहे हैं। 2011-12 में नवीन जिंदल ने 73.42 करोड़ रुपए वेतन लिया। सन नेटवर्क के कलानिधि और कावेरी कलानिधि, दोनों ने अलग-अलग 57.1 करोड़ का वेतन लिया। हीरो मोटर कॉरपोरेशन के पवन मुंजाल व बृजमोहन मुंजाल, प्रत्येक ने 34.55 करोड़ रुपए वेतन लिया और मद्रास सीमेंट्स के पीआर राजा को वेतन में 29.34 करोड़ रुपये मिले।

7. इन आसमान छूते मुनाफों में केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा टैक्स में भारी छूटें और अन्य सहूलियतें देकर और भी ऊंची वृद्धि की गई है। पिछले पांच सालों में कारपोरेट कम्पनियों को टैक्स में मिलने वाली छूटों की कुल मात्रा

25 लाख करोड़ रुपए के लगभग थी. यह खुले और कानूनी तौर पर हुआ अब तक का सबसे बड़ा घोटाला है, जबकि 70 प्रतिशत से अधिक भारतीयों को 20 रुपए से कम पर प्रतिदिन गुजारा करना पड़ता है. टैक्स में भारी छूटों के अतिरिक्त अमीरों को ऐसे पर्याप्त मौके दिये गये हैं जिनका इस्तेमाल करके वे नियम-कानूनों की कमजोरियों का फायदा उठा कर गैरकानूनी तरीकों से विदेशी बैंकों में अपना धन जमा रखते हैं और कई रास्तों से अपना काला धन सफेद करते हैं.

### मजदूर वर्ग : बदलती संरचना

8. देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में अलग-अलग क्षेत्रों की हिस्सेदारी में हुए बदलाव के साथ ही श्रम शक्ति की संरचना भी लगातार बदल रही है, यद्यपि यह बदलाव उसी अनुपात में नहीं हुआ है. जीडीपी में कृषि की हिस्सेदारी अब 15 प्रतिशत से भी कम हो गई है, जबकि लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए अब भी कृषि पर निर्भर है. सेवा क्षेत्र अब भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है जिसकी सकल राष्ट्रीय उत्पाद में 59 प्रतिशत हिस्सेदारी है. पिछले 40 वर्षों में इस क्षेत्र में रोजगार की औसत वृद्धि दर 3.5 प्रतिशत वार्षिक रही है, फिर भी कुल रोजगार में इसका हिस्सा 1972-73 में 15 प्रतिशत से बढ़कर 2009-10 में केवल 26 प्रतिशत तक ही पहुंचा है.

9. प्राथमिक या कृषि क्षेत्र में रोजगार की दर लगातार घटी है और खनन एवं द्वितीयक क्षेत्र यानी विनिर्माण, विद्युत, जल, गैस और निर्माण क्षेत्रों में, केवल निर्माण क्षेत्र में ही रोजगार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जबकि तृतीयक अथवा सेवा क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों में— वित्तीय सेवाओं, व्यापार और परिवहन में— केंद्रित रही है.

10. अगर हम ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की तुलना करें, तो ग्रामीण अर्थतंत्र के मुकाबले शहरी क्षेत्रों में रोजगार में वृद्धि अधिक रही है. ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में ठहराव की मुख्य वजह कृषि क्षेत्र में रोजगार में कमी है और ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-कृषि रोजगार में होने वाली सतत वृद्धि के बावजूद यह कमी बनी हुई है. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) के अनुमान के अनुसार गैर-कृषि कार्यों में 1972-73 में 2 करोड़ 85 लाख 10 हजार लोग लगे हुए थे, 1987-88 में उनकी संख्या 5 करोड़ 61 लाख 10 हजार, 2004-05 में 9 करोड़ 35 लाख 30 हजार और 2009-10 में बढ़कर 10 करोड़ 75 लाख 10 हजार हो गई.



11. समग्र रोजगार सृजन के दृष्टिकोण से देखें तो भारत की आर्थिक वृद्धि को रोजगार-विहीन वृद्धि कहा जा सकता है। खास तौर से आज के आर्थिक उदारीकरण वाले दौर के लिए तो यह बात और भी सच साबित होती है। उदारीकरण से पहले, 1972-73 से 1983 के बीच की अवधि में, जब जीडीपी में 4.7 प्रतिशत सालाना की दर से वृद्धि हुई थी, तो रोजगार में वृद्धि की दर 2.4 प्रतिशत थी। 1983-84 से 1993-94 के बीच जीडीपी में 5 प्रतिशत सालाना की वृद्धि हुई, जबकि रोजगार की वृद्धि दर गिरकर 2 प्रतिशत हो गई। अगले 10 वर्षों में जीडीपी में सालाना वृद्धि दर 6.3 प्रतिशत रही, जबकि रोजगार में वृद्धि की दर और घटकर 1.8 प्रतिशत पर आ गई। और 2004-05 से 2009-10 के बीच, जब जीडीपी में वृद्धि की दर काफी बढ़कर 9 प्रतिशत पर जा पहुंची, तो रोजगार में वृद्धि लगभग रुक ही गई, और वह अब तक के सबसे निचले स्तर पर यानी 0.22 प्रतिशत पर पहुंच गई!

12. रोजगार वृद्धि की दर में सतत हास के समग्र खाके में, कुछेक लक्षण स्पष्टतः उभरकर सामने आये हैं। पहला, सकल घरेलू उत्पाद में कृषि के महत्व में तेजी से कमी आने के बावजूद अब भी यह सबसे बड़ा रोजगार देने वाला क्षेत्र है, क्योंकि गैर-कृषि क्षेत्र ने रोजगार के इतने अवसर नहीं पैदा किये हैं कि श्रम शक्ति का कोई बड़ा अंश कृषि कार्य से अलग हो सके। दूसरा, रोजगार में सबसे ज्यादा वृद्धि असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र में हुई है, जिसकी विशेषता है कम आमदनी और खराब कार्य-स्थितियां। तीसरा, संगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि ज्यादातर अस्थायी और ठेका मजदूरों की श्रेणी में हुई है। कुल मिलाकर, हर साल मजदूरों की संख्या में अनुमानतः 1.3 करोड़ की वृद्धि हो रही है। जहां कम आय वाले असंगठित क्षेत्र में प्रति वर्ष 80 लाख नौकरियां जुड़ती जा रही हैं, वहीं 50 लाख लोग या तो बेरोजगार रहते हैं या फिर अस्थायी मजदूरों की श्रेणी में शामिल हो जाते हैं।

## मजदूर वर्ग पर तीखा हमला

13. शोषण कई तरीकों से होता है। जहां सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य का दोहन बढ़ाने के लिए नवीनतम तेज-रफ्तार संयंत्रों और मशीनों का उपयोग शुरू हुआ है, वहीं विश्राम के घंटों को कम करने और मजदूरों पर कड़ी निगरानी रखने जैसे विभिन्न तरीकों से मजदूरों के प्रभावी काम के घंटों को और भी बढ़ाया जाता है, ताकि मजदूरों के श्रम से निरपेक्ष अतिरिक्त मूल्य को अधिकाधिक निचोड़ा जा सके। दूसरे, स्थायी किस्म के काम में भी अस्थायी/ ठेका मजदूरों को बड़े पैमाने पर लगाया जा रहा है ताकि मजदूरी की मद में

खर्च को घटाया जा सके. यद्यपि यह गैरकानूनी है, फिर भी इसे धड़ल्ले से किया जा रहा है, जिसका कारण औद्योगिक मजदूरों की विशाल रिजर्व फौज का लगातार बढ़ते जाना है, और यही मजदूरी के सामान्य स्तर को नीचा भी बनाये रखता है. तीसरे, वेतन आयोगों और द्विपक्षीय/त्रिपक्षीय वेतन समझौतों को लगातार विलंबित किया जा रहा है, उनमें खलल डाला जा रहा है और यहां तक कि उन्हें विफल कर दिया जा रहा है ताकि वास्तविक मजदूरी को घटाया जा सके या अवरूद्ध रखा जा सके.

14. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और अर्द्ध-सरकारी उपक्रमों का, अगर सीधासीधी न हो सके तो, खंड-खंड करके या पिछले दरवाजे से निजीकरण पहले किसी भी वक्त की तुलना में ज्यादा व्यापक और तेज हो गया है. इससे न सिर्फ सम्बंधित मजदूरों और कर्मचारियों को अनिश्चित भविष्य की ओर धकेला जा रहा है, बल्कि इससे रोजगार में तुरंत कटौती के साथ-साथ वेतन में कमी आई है और काम की स्थितियां और खराब हुई हैं. भारत सरकार 7 सार्वजनिक क्षेत्र इकाइयों को बंद कर चुकी है जबकि वह अन्य 'बीमार' सार्वजनिक क्षेत्र इकाइयों को पुनर्जीवित करने की बातें कर रही है, भारी उद्योगों एवं सार्वजनिक संस्थानों के विभाग के तहत 8 सार्वजनिक क्षेत्र इकाइयों के कर्मचारियों को अक्टूबर 2012 से वेतन नहीं मिला है. सभी सार्वजनिक क्षेत्र इकाइयों में वेतन व मजदूरी की नियमित अदायगी के लिए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि किसी भी संस्थान में, चाहे सार्वजनिक हो या निजी, पेमेंट ऑफ वेजेस् ऐक्ट का उल्लंघन नहीं हो रहा है सरकार को उत्तरदायी ठहराना होगा.

15. स्पेशल इकॉनॉमिक जोन के अलावा हरियाणा के गुडगांव-मनेसर क्षेत्र, उत्तराखंड के रुद्रपुर एवं अन्य इलाकों और चेन्नई के श्रीपेरुम्बुदूर जैसे नये औद्योगिक क्षेत्रों को "ट्रेड यूनियन मुक्त क्षेत्रों" में बदला जा रहा है. ट्रेड यूनियनों का पंजीकरण करने से इंकार किया जा रहा है और मजदूरों को ट्रेड यूनियन बनाने या उनमें शामिल होने से रोका जा रहा है. यहां तक कि संगठित क्षेत्र में, जहां ट्रेड यूनियन संस्कृति लम्बे अरसे से स्थापित है, प्रबंधन अक्सर लोकप्रिय जुझारू यूनियन को मान्यता देने से इंकार करके प्रबंधन-परस्त जेबी यूनियनों को मान्यता दे देता है.

16. कठोर संघर्षों के बल पर हासिल ट्रेड यूनियन अधिकारों का हरण करने पर खास जोर देते हुए, औद्योगिक लोकतंत्र को समाप्त करना पूंजी के हाथों अपने वर्ग-शत्रु को अपने शिकंजे में दबाये रखने का सबसे व्यापक तौर पर इस्तेमाल में लाया जाने वाला राजनीतिक हथियार बन गया है, ताकि

मजदूर वर्ग संगठित प्रतिरोध में नहीं खड़ा हो सके। इसीलिए ये मुद्दे और इनसे जुड़ा श्रम की मर्यादा का सवाल आज मजदूर वर्ग आंदोलन के सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न बन गये हैं।

## मजदूर प्रतिरोध के कुछ यादगार क्षण

17. पिछले कुछ वर्ष केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों और फेडरेशनों द्वारा अक्सर चलाये गये राष्ट्रीय संयुक्त अभियानों के साक्षी रहे हैं। यहां तक कि कांग्रेस और भाजपा से संबद्ध ट्रेड यूनियन केन्द्र भी मजदूरों के व्यापक दबाव में इन अभियानों में शामिल होने को विवश हुए हैं। केन्द्रीय स्तर पर हो या किसी क्षेत्र विशेष में, समस्त ट्रेड यूनियनों का संयुक्त कार्रवाइयों में उतर पड़ना वर्तमान दौर की एक प्रमुख विशेषता रही है। इस तरह की समग्र यूनियन एकता का इस्तेमाल अपने आप में अंत के तौर पर नहीं बल्कि वर्ग संघर्ष को तीखा और धारदार बनाने तथा उदारीकरण व निजीकरण की नीतियों को उलटने के संकल्प को शक्तिशाली रूप से बुलंद करने के लिये एक अनुकूल मंच के रूप में अवश्य ही किया जाना चाहिए।

18. ऑटो एवं ऑटो पार्ट्स बनाने वाले उद्योग, जो एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हैं, इस दौर में भारत में वर्ग संघर्ष के सबसे गतिशील ज्वलंत बिंदुओं के रूप में उभरे हैं। महिन्द्रा (नासिक, महाराष्ट्र), सन बीम ऑटो (गुड़गांव, हरियाणा), बोश चेसिस (पुणे, महाराष्ट्र), होंडा मोटर साइकिल (मनेसर, हरियाणा), रिको ऑटो (गुड़गांव, हरियाणा), प्रिकोल (कोयम्बटूर, तमिलनाडु), वोल्वो (होसकोटे, कर्नाटक), एमआरएफ टायर्स (चेन्नई), जनरल मोटर्स (हलोल, गुजरात), मारुति सुजुकी (मनेसर), बोश (बंगलौर), डनलप (हुगली, पश्चिम बंगाल और चेन्नई), कपारो व हुंडई (श्रीपेरुम्बुदूर, चेन्नई) – आदि सभी बड़ी ऑटो उत्पादक कंपनियां 2007 से 2012 के बीच की अवधि में मजदूरों के विक्षोभ आंदोलन की गवाह रही हैं।

19. ऑटोमोबाइल उद्योग ने कुल उत्पादन और प्रति श्रमिक उत्पादन, दोनों लिहाज से उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की है। वाहनों का उत्पादन 2004-05 में 85 लाख (सभी प्रकार के वाहन) से बढ़कर 2011-12 में 2 करोड़ 4 लाख हो गया है। इन दोनों उद्योगों में सस्ते ठेका मजदूरों की संख्या स्थाई मजदूरों से बहुत अधिक है, और वास्तविक मजदूरी (मूल्यवृद्धि को हिसाब में रखकर घटाई गई मजदूरी) में लगातार गिरावट आई है, 2000-01 से 2009-2010 के बीच की अवधि में यह गिरावट 18.9 प्रतिशत है। 2000-01 में एक ऑटो मजदूर का 8 घंटे की काम की पाली में से 2 घंटे 12 मिनट का समय अपने

व अपने परिवार के भरण-पोषण को अर्जित करने में लगता था ; बाकी 5 घंटे 40 मिनट का समय पूंजीपति (और बैंकों, भूस्वामियों, प्रबंधनकर्मियों, आदि) के लिये अतिरिक्त मूल्य के उत्पादन में लगता था. 2009-10 में आकर उसका सिर्फ 1 घंटे 12 मिनट का समय अपने व परिवार के भरण-पोषण के लिए लगता है, और 6 घंटे 48 मिनट का समय पूंजीपति के लिये अतिरिक्त मूल्य के उत्पादन में चला जाता है.

20. भारत के कुल आँटो उत्पादन के लगभग 60 प्रतिशत उत्पादन दिल्ली की सीमा पार स्थित गुड़गांव-मनेसर-बावल क्षेत्र में होता है, लेकिन यहां के करीब 10 लाख मजदूरों में से 80 प्रतिशत मजदूर ठेके पर नियोजित हैं. संगठन तोड़ना, बर्खास्त करना, पीटना (2006 में वार्ता के लिए बुलाए गए हॉंडा मजदूरों की शांतिपूर्ण जमायत पर हुई पुलिस बर्बरता को याद करें), झूठे आपराधिक मामले थोप देना और यहां तक कि हत्या कर देना यहां आम बात है. मसलन, आँटो पार्ट्स बनाने वाली जर्मन कंपनी बोश ने ट्रेड यूनियन बनाने के तीन प्रयासों को नाकाम कर दिया और कमोबेश यही हालात दूसरी फ़ैक्टरियों में भी हैं.

21. स्वाभाविक रूप से, आँटो एवं आँटो पार्ट्स, दोनों उद्योगों में मजदूरों के बहुमत का विश्वास हासिल करने वाली असली ट्रेड यूनियनों को मान्यता देना और नियमित किस्म के कामों में नियोजित ठेका व प्रशिक्षु मजदूरों को, जिन्हें कानून का उल्लंघन करके बेहद कम मजदूरी देकर स्थायी मजदूरों का काम लिया जा रहा है, उन्हें स्थायी करना, बुनियादी मांगें बनकर उभरी हैं. कार्यस्थल (शॉप) एवं संयंत्र (प्लांट) के स्तर पर मजदूर अक्सर सम्मान के सवाल पर और अपने जुझारू साथियों के उत्पीड़न के खिलाफ काम बंद करने एवं अन्य तरीकों से विरोध प्रकट करते हैं. वर्ग संघर्ष की नई विशिष्टताएं— प्रबंधन की बहुराष्ट्रीय तकनीकें, मजदूर प्रतिरोध का उभरता नया चेहरा और राज्य की भूमिका— भारत के दो महत्वपूर्ण 'आधुनिक' औद्योगिक केंद्रों में हुए दो प्रतिनिधि आंदोलनों में जीवंत रूपों में दिखे हैं.

## मारुति और प्रिकोल संघर्ष के सबक

22. कुख्यात खाप पंचायतों के प्रभुत्व वाले रूढ़िवादी हिंदी हृदयस्थल में स्थित मानेसर का मारुति-सुजुकी कारखाना लंबे समय से औद्योगिक संघर्ष की अग्रिम चौकी बना रहा है. ज्यादातर मजदूर युवा हैं और कमोबेश पढ़े-लिखे हैं. उनमें से बहुतेरे श्रमिक दूर-दराज के इलाकों से आते हैं. और अतीत से भिन्न जैसा कि आजकल चलन है, कंपनी उनके आवास की व्यवस्था नहीं

करती, अतः ये मजदूर स्थानीय जमींदारों द्वारा संचालित छोटे-छोटे कमरों से बनाये गये हॉस्टलों में रहते हैं। यूनियन बनाने के अधिकार की मांग पर लंबे अरसे तक चलाये गये शांतिपूर्ण आंदोलनों के बाद मारुति सुजुकी इम्प्लाइज़ यूनियन (एमएसईयू)— जिसमें सभी श्रेणियों के मजदूर शामिल हैं— का मार्च 2012 में पंजीकरण हुआ। मगर, आज तक प्रबंधन गैर कानूनी तरीके से इस बात पर अड़ा हुआ है कि यह किसी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन से सम्बद्ध नहीं हो सकती। जून 2012 में 13 दिनों की हड़ताल हुई, जो तब समाप्त हुई जब कंपनी ने निकाले गये 11 मजदूरों को काम पर वापस लेना स्वीकार कर लिया।

23. अत्यंत उल्लेखनीय बात यह है कि 18 जुलाई 2012 की घटना की शुरूआत ऐसे हुई कि एक सुपरवाइजर ने दलित मजदूर को जाति-आधारित गाली दी और मजदूर ने इसका उचित जवाब दिया। ध्यान देने की बात यह है कि यहां इस किस्म का अपमान करना कोई अपवाद नहीं है। सुपरवाइजर और प्रबंधकों को नियमतः ऐसा करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है ताकि मजदूरों का मनोबल तोड़ा जा सके। घटना के बाद प्रबंधन व उसके बाउंसरों (भाड़े के गुंडों) द्वारा उकसाई गई हिंसा में दोनों पक्षों के कई लोग घायल हुए, और एक मानव संसाधन प्रबंधक की मृत्यु हो गई। प्रबंधन और सरकारी अधिकारी तत्काल हरकत में आ गये। बड़े पैमाने पर अंधाधुंध गिरफ्तारियां हुईं और पूरा इलाका पुलिस और गुंडा आतंक की गिरफ्त में आ गया।

24. खाप पंचायतों में संगठित कुलक-जमींदार शक्तियों ने तय किया कि हड़ताली यूनियन का दमन किया जाय। उन्होंने अपने किरायेदार मजदूरों को मकान खाली करने के लिए विवश किया, जिससे उनकी समस्या और भी बढ़ गई। इस बीच पूरी फैक्टरी लोहे के किले में तब्दील कर दी गई। फैक्टरी में आने की इच्छा रखने वाले हर मजदूर पर 'अच्छे आचरण' का लिखित वायदा करने की पूर्वशर्त लादकर अघोषित तालाबंदी कर दी गई।

25. इस पृष्ठभूमि में सोसायटी ऑफ इंडियन ऑटोमोबाइल मैनुफैक्चरर्स (एसआईएम) और ऑटोमोटिव कम्पोनेंट मैनुफैक्चरर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया (एसीएमआई) ने 'लचीले' श्रम कानूनों और मंदी के दौर में स्थायी मजदूरों तक को निकाल बाहर करने के अधिकारों की मांग की। श्रम संबंधों के 'विशेषज्ञों' ने इन मांगों को खुद मजदूरों के हित में बताते हुए इनका समर्थन किया। तर्क दिया गया कि नियोक्ता ठेका मजदूरों को काम पर लेने के लिए मजबूर हैं, क्योंकि भारत के 'पुराने' पड़ चुके श्रम कानून उन्हें स्थायी मजदूरों को मंदी के दौरान भी काम से हटाने का अधिकार नहीं देते! ऑटो कंपनियों ने अपने कारखानों को गुजरात में ले जाने की धमकी दी और खुले

आम कहा कि वे अपने उत्पादन को 'यूनियन प्रूफ' (यूनियन-मुक्त) बनाना चाहते हैं (यानी उन्हें उम्मीद थी कि नरेन्द्र मोदी गड़बड़ी करने वाले लोगों से निपट ही लेंगे)।

26. मजदूरों ने एक दीर्घकालीन धरना आयोजित किया, जिसमें दिल्ली से विश्वविद्यालयों के छात्र आकर शामिल हुए, जबकि कोयम्बटूर के प्रिकोल और गुड़गांव के होंडा मजदूरों ने उनके साथ एकजुटता जाहिर करते हुए प्रदर्शन किये. अंततः उत्पादन फिर से शुरू हो गया. लेकिन अब पुलिस, सेना के पूर्व जवान और फैक्ट्री में चौबीसों घंटे चक्कर लगाने वाली एक स्पेशल ऐक्शन फोर्स, तथा सुरक्षा कैमरों के जरिये हर मजदूर की हर गतिविधि की निगरानी होने लगी.

27. यही कहानी पहले प्रिकोल ऑटोमोबाइल पुर्जा फैक्ट्री (कोयम्बटूर) में दूसरी तरह से घटित हुई थी. मार्च 2007 में यहां एक जबर्दस्त संघर्ष चला, जिसकी एकमात्र मांग थी मजदूरों के विशाल बहुमत के समर्थन वाली नवगठित यूनियन को मान्यता दिलाना. यह लड़ाई स्थायी मजदूरों, सहायक यूनिट (एन्सिलरी) के मजदूरों और ठेका मजदूरों ने एक साथ मिलकर लड़ी. ऐक्टू से संबद्ध यूनियन को माओवादी करार दिया गया. राज्य सरकार के पूर्ण समर्थन से प्रबंधन ने मजदूरी में वृद्धि से इंकार, कटौतियां, वेतनवृद्धि पर रोक, सेवा-भंग और आपराधिक मुकदमे लादने जैसे दंडात्मक कदमों का सहारा लिया. इससे डरे बिना मजदूरों ने मार्च 2007 की हड़ताल शुरू की.

28. सितंबर 2009 में प्रिकोल कम्पनी के उपाध्यक्ष (मानव संसाधन) की मौत का प्रबंधन ने मजदूरों को अलगाव में डालने और उनके दमन की कोशिश में भरपूर इस्तेमाल किया। यूनियन के समूचे नेतृत्व और महिलाओं समेत तमाम अगुवा मजदूरों पर फर्जी मुकदमे लाद दिए गए। उनमें से कुछ को 100 से अधिक दिन जेल में बिताने पड़े। लेकिन कभी भी वे रक्षात्मक नहीं हुए या अपने संघर्ष को लेकर उन्हें कभी कोई पछतावा नहीं हुआ। लड़ाई अदालत के भीतर और बाहर, दोनों जगह जारी रही।

29. हमारी पार्टी और ट्रेड यूनियन ने मजदूरों के बीच व्यापक रूप से और गहराई से काम किया और उन्हें अपने परिवार के सदस्यों एवं स्थानीय लोगों को संघर्ष के समर्थन में गोलबंद करने के लिए प्रोत्साहित किया। विभिन्न कार्यक्रमों और बातचीत के जरिए उनकी राजनीतिक चेतना उन्नत करने के लिए लगातार रचनात्मक प्रयास किए गए। जिले में कम्युनिस्ट पार्टी का विस्तार हुआ जिसमें प्रिकोल के मजदूरों ने सक्रिय भूमिका निभाई। इन सबका सम्मिलित असर यह रहा कि प्रबंधन-सरकार का गठजोड़ वैसा कुछ भी करने में नाकाम

रहा जो आम तौर पर ऐसे मामलों में वह कर पाता है— मजदूरों को लड़ाई में पस्त कर देना और अंततः उन्हें समर्पण के लिए मजबूर कर देना। मजदूर अपनी मांग पर डटे रहे और यूनियन द्वारा मान्यता हासिल करने के साथ ही उन्होंने अपना बुनियादी हक हासिल कर लिया।

30. जहां व्यवस्था श्रम कानूनों को लागू करने से हठपूर्वक इनकार कर रही है और उनके खुले उल्लंघन को ही नियम बनने दे रही है; जहां शिकायतों के निपटारे के मौके खत्म हो रहे हैं और यूनियनों के कामधाम पर अंकुश लगा दिया गया है; और जहां प्रबंधक अक्सर अलोकतांत्रिक, अपमानजनक, और शोषणमूलक कार्यस्थितियों के विरुद्ध संघर्षरत मजदूरों से निपटने के लिए किराए के गुंडों, उत्पीड़न और भ्रष्ट तरीकों का सहारा ले रहे हैं, तो ऐसे हालात में विस्फोट और हिंसक टकराव लाजिमी हो जाते हैं। पूर्व में घटित ग्रेजियानो (नोएडा) और रीजेंसी सेरामिक (पुदुचेरी) की घटनाएं— जिनमें औद्योगिक झड़पों में मैनेजर मारे गए— और रिको फैक्टरी (गुडगांव), जहां कंपनी के अधिकारियों और किराए के गुंडों द्वारा एक मजदूर को भट्ठी में फेंककर जला दिया गया (इस मामले में हत्यारों को अब तक दंड नहीं मिला है) इस बात के पर्याप्त सबूत हैं। साथ ही, कारपोरेट सेक्टर और सरकारें ऐसी घटनाओं का बहाना बनाकर श्रम कानूनों में 'सुधार' की मांग कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में, वे श्रम कानूनों के मौजूदा उल्लंघनों को कानूनी जामा पहनाना चाहते हैं— और बिना किसी कानूनी बाधा के मजदूरों के शोषण की आजादी चाहते हैं।

31. ऐसी स्थिति में, मजदूर वर्ग को औद्योगिक लोकतंत्र, समान काम के लिए समान वेतन तथा मजदूरों के अधिकारों और सम्मान के लिए संघर्ष को तीखा करना होगा। उसके सामने ऐसा राजनीतिक प्रतिरोध विकसित करने की चुनौती खड़ी है जो फैक्टरी से बाहर के जनवादी तबकों को गोलबंद करने में सक्षम हो और मजदूर वर्ग को एक सबल राजनीतिक शक्ति के बतौर स्थापित करे। इस बात का श्रेय मारूति के मजदूरों को ही जाता है कि उन्होंने प्रबंधन और राज्य के व्यवस्थित हमले और दमन का मुकाबला करते हुए संघर्ष और विरोध के झंडे को बुलंद रखा है। ज्यादातर 'मान्यताप्राप्त' केंद्रीय ट्रेड यूनियनों ने संघर्षरत मारूति मजदूरों के समर्थन और एकजुटता में कम कारगर गोलबंदी की। ऐक्टू को इस संबंध में अवश्य ही दृढ़तापूर्वक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।

## ठेका मजदूर

32. नव उदारवादी सुधार के दो दशकों में उत्पादन की प्रक्रियाओं में बदलाव आए हैं (मसलन श्रम की सघनता या बहुलता की जगह पूंजी की सघनता वाला स्वचालित उत्पादन), साथ ही मजदूर वर्ग की संरचना में भी बदलाव आए हैं (मसलन बड़े पैमाने पर मजदूरों को अस्थायी रूप से नियोजित करना)। विभिन्न औद्योगिक सेक्टरों और श्रमिकों की श्रेणियों के आपेक्षिक महत्व में भी कुछ बदलाव आए और उसी तरह प्रत्येक सेक्टर की समस्याओं की प्रकृति में भी बदलाव आए हैं। इस संदर्भ में मजदूर वर्ग आंदोलन को भी अपने-आप को पुनर्गठित करने की जरूरत है और ऐसे समुचित तरीके और साधन खोजने की जरूरत है जो पूंजीवाद द्वारा स्थायी मजदूरों और ठेका, कैजुअल, अस्थायी जैसे अन्य किस्म के मजदूरों व प्रशिक्षुओं (अप्रेंटिस) के बीच खड़ी की गई बनावटी दीवारों को तोड़ सकें।

33. पहले ही बताया गया है कि भारत में सुधारोत्तर औद्योगिक वृद्धि कम मजदूरी पाने वाले ठेका, प्रवासी और महिला श्रमिकों के बल पर हुई है। फैक्टरी सेक्टर की कुल श्रम शक्ति में ठेका मजदूरों का अनुपात 1999-2000 में 20 प्रतिशत से बढ़कर 2008-2009 में 32 प्रतिशत हो गया है। संगठित सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में अधिकाधिक कामों को मनमाने तरीके से गौण काम (नॉन-कोर) और गैर-बारहमासी (नॉन-पेरेनियल) काम कहकर ठेके पर कराया जा रहा है। मुंबई में कुछेक मामलों में देखा गया है कि प्रबंधन की पक्षधर यूनियनों के नेता भी मजदूरों के ठेकेदार बन गये हैं। 2001 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड के सम्बंध में फैसले, कि किसी सरकार द्वारा ठेका श्रम के उन्मूलन की स्थिति में भी प्रधान नियोक्ता द्वारा ठेका मजदूरों को स्वतः स्थायी मजदूरों के बतौर नियुक्त नहीं किया जा सकता, ने ठेका श्रम (उन्मूलन और नियमन) अधिनियम, 1970 को उलट दिया है। ठेका मजदूरों के हितों की रक्षा करने और ठेका प्रथा की बेलगाम वृद्धि को रोकने के लिये ट्रेड यूनियन आंदोलन को और शक्तिशाली कानून बनाने तथा उसका कड़ाई से पालन करवाने के लिये मजबूती से लड़ाई लड़नी होगी।

34. ठेका मजदूर जो मुख्यतः जोखिम वाले कामों पर रखे जाते हैं और जिन्हें बहुत मामूली मजदूरी दी जाती है, यकीनन इसे खामोशी से कतई बर्दाश्त नहीं कर रहे हैं। स्थायी मजदूरों के साथ संयुक्त संघर्षों के अलावा वे स्वतंत्र ढंग से अपने आंदोलन भी चला रहे हैं। इसका उल्लेखनीय हालिया उदाहरण सार्वजनिक क्षेत्र के न्येवेली लिग्नाइट कॉरपोरेशन (एनएलसी) में अप्रैल 2012 में चली 44 दिनों की हड़ताल है। यह हड़ताल कुछेक हजार ठेका मजदूरों



द्वारा उन्हें स्थायी मजदूरों के समतुल्य वेतन दिये जाने और अपने काम के नियमितीकरण के लिए बरसों से चलाए जा रहे आंदोलन का चरम बिंदु था। ट्रेड यूनियनों द्वारा ठेका मजदूरों के समर्थन में स्थायी मजदूरों को गोलबंद करने की कोई कोशिश न किये जाने के चलते इन मजदूरों को एक बार फिर हार का मुंह देखना पड़ा, लेकिन इसके पहले ही ठेका मजदूर अपने अंदर छिपी विशाल संभावना और टिकारूपन का प्रदर्शन यकीनन कर चुके थे। हमारे अनवरत संघर्ष के फलस्वरूप राज्य के मालिकाने वाली सार्वजनिक क्षेत्र इकाई कोलकाता ट्रामवेज कॉरपोरेशन में एक हजार से ज्यादा ठेका मजदूर स्थायी तौर पर नियुक्ति हासिल कर सके हैं। असम में, हमारे साथियों ने ऑयल सेक्टर में ठेका मजदूरों को संगठित व एकताबद्ध करने में सफलता हासिल की है। चंडीगढ़ के पीजीआई अस्पताल में हमारी यूनियन को, जो 1800 ठेका मजदूरों का प्रतिनिधित्व करती है, एक औपचारिक समझौता कराने में सफलता मिली है जिसके तहत समान काम के लिये समान वेतन के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया गया लेकिन प्रबंधन इसे लागू करने में टालमटोल कर रहा है।

35. शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे सार्वजनिक सेवा के प्रमुख क्षेत्र रोजगार के प्रमुख स्रोत बने हुए हैं, लेकिन उनमें काम की प्रकृति अधिकाधिक असुरक्षित बन गई है। प्राइमरी स्कूल से लेकर कालेजों तक में स्थायी अध्यापकों के पद लगातार खत्म किये जा रहे हैं या खाली पड़े हैं, और अनुबन्धित अध्यापकों की संख्या में जबर्दस्त बढ़ोत्तरी हुई है। बहु प्रचारित राष्ट्रीय ग्रामीण हेल्थ मिशन (एनआरएचएम) जिसे अब शहरी क्षेत्रों तक भी विस्तारित किया जा रहा है, वह भी मुख्य रूप से आशा कर्मियों के योगदान से, जिसे कोई मान्यता नहीं दी जाती है, चल रहा है। इन्हें मानदेय के बतौर बहुत ही कम राशि मिलती है और स्थायी रोजगार जैसी सुरक्षा या मान्यता हासिल नहीं है।

36. अनुबन्ध पर रखे गए शिक्षकों और आशा जैसे मानदेय-आधारित कर्मचारियों ने संगठित होने और बेहतर वेतन एवं कार्यस्थितियों में सुधार लाने के लिए लड़ने का जबर्दस्त माद्दा दिखाया है। समूचे देश में अनुबन्ध पर काम कर रहे शिक्षकों और आशाकर्मियों के जुझारू संघर्ष मजदूर वर्ग आंदोलन के उभरते प्रेरणादायी पहलू हैं। 'मानदेय' की धारणा को रोजगार और वेतन के मुद्दे को ही नकार देने के मकसद से चालू किया गया है, और मानदेय-आधारित कर्मचारी सही तौर पर खुद को कर्मचारी के बतौर मान्यता दिये जाने तथा समान काम के लिये समान वेतन के उसूल को लागू किये जाने की मांग उठा रहे हैं।

## प्रवासी मजदूर

37. प्रवासी मजदूर असुरक्षित और खतरनाक कार्यस्थितियों में कम मजदूरी पर ज्यादा घंटे काम करते हैं। अंतरप्रदेशिक प्रवासी मजदूर अधिनियम एक ऐसा कानून है, जिसका पालन करने के बजाय उसे तोड़ा ही ज्यादा जाता है। अपने घर और समुदाय से दूर वे संकीर्ण आंचलिक पूर्वाग्रहों और सांप्रदायिक अभियानों समेत तमाम किस्म के अपमान और उत्पीड़न के शिकार होते हैं, जैसा शिव सेना और उससे निकले मनसे द्वारा आपसी होड़ में चलाए गए प्रवासी-विरोधी विद्वेष अभियान में सबसे तीखे ढंग से बार-बार दिखाई पड़ा। असम में कोंकराझाड़ की हिंसा के बाद एसएमएस के जरिये चलाये गये दुष्टतापूर्ण अभियान के चलते बंगलौर, हैदराबाद और चेन्नई जैसे शहरों से असमिया एवं अन्य पूर्वोत्तर प्रांतों के मजदूरों की भयवश घर वापसी ने इस बात को उजागर कर दिया है कि भारत के लाखों प्रवासी मजदूरों का दैनंदिन जीवन कितना असुरक्षित है। हमें प्रवासी मजदूरों पर अत्याचार से निपटने के लिए ऐसा कानून बनाने के लिए लड़ना होगा जो एससी/एसटी अत्याचार विरोधी कानून जैसा हो।

38. मजदूरों का पलायन महज अंतरप्रदेशिक ही नहीं रह गया है, बल्कि अधिकाधिक मजदूर ऊंची मजदूरी और बेहतर अवसर की तलाश में विदेशों में भी जा रहे हैं। विदेशों में बसे पेशेवर भारतीय लोगों— डाक्टरों, शिक्षकों, सूचना प्रौद्योगिकी इत्यादि से जुड़े पेशेवरों— ने दशकों के संघर्ष के बाद अपने अधिकार हासिल कर लिये हैं और उत्तरी अमरीका, यूरोप के कुछ हिस्सों और आस्ट्रेलिया में उल्लेखनीय हद तक अपनी जगह भी बना ली है, लेकिन विदेशों में काम करने वाले मेहनतकश (ब्लू कॉलर) भारतीयों को नस्ली भेदभाव और हमलों तथा कभी-कभी अर्ध-बंधुआगीरी के अत्यंत कठोर यथार्थ का भी सामना करना पड़ता है। विदेशों में काम करने वाले मजदूरों द्वारा भेजी गई रकम का परिमाण विदेशी निवेश से बहुत ज्यादा है, फिर भी भारत सरकार विदेशों में कार्यरत भारतीय कामगारों की असुरक्षित स्थिति को लेकर आम तौर पर उदासीन रहती है, जबकि विदेशी निवेश हासिल करने के लिए वह पलक-पांवड़े बिछाए रहती है।

## निर्माण मजदूर

39. देश भर में भूसंपत्ति (रियल एस्टेट) में आए उछाल के चलते निर्माण क्षेत्र कृषि के बाद दूसरा सबसे बड़ा रोजगार देने वाला सेक्टर हो गया है। मजदूरों के लिये सेंट्रल वेल्फेयर ऐक्ट (केंद्रीय कल्याणकारी कानून) तो

है, लेकिन इसका पालन बेहद ढिलाई, आधे मन से और अंशतः ही होता है। हमें कई राज्यों में यूनियनों बनाने में कुछ प्रगति हासिल हुई है। इस आधार पर हमने निर्माण मजदूरों का अखिल भारतीय कन्फेडरेशन बनाया है और इसी संगठन में हम निर्माण से जुड़ी अन्य श्रेणियों के मजदूरों, जैसे ईट भट्ठा और पत्थर कटाई-तुड़ाई (स्टोन क्रशर) को शामिल करने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन इस क्षेत्र में एक अनिवार्य खतरा यह है कि मजदूर यूनियन कार्यकर्ताओं को महज वेल्फेयर एजेंट के बतौर देखने लगते हैं। अभी इस बड़े सवाल को हल करना बाकी है कि कैसे मजदूरों को महज लाभार्थियों के बजाय संभावित लड़ाकू ताकत के बतौर देखा जाय। ट्रेड यूनियन नेताओं का खुद ठेकेदार बन जाना या फिर उनका अर्थवाद व परिणामवाद के दलदल में फंस जाना— ऐसे कुछ नकारात्मक अनुभवों के बावजूद, निर्माण मजदूरों को संगठित करने का हमारा अनुभव काफी उत्साहवर्द्धक रहा है क्योंकि यूनियनों में संगठित मजदूरों की एक बड़ी संख्या ट्रेड यूनियन संघर्षों में और साथ ही राजनीतिक कार्यवाहियों में सक्रिय भूमिका अदा कर रहे हैं।

40. असंगठित या कमजोर रूप से संगठित मजदूर, जो अधिकांशतः श्रम-सघन विनिर्माण/असेंबली के कामों— मसलन, कपड़ा सिलाई और जूता-चप्पल बनाने, हीरे की कटाई और पॉलिश, माचिस बनाने (जहां बाल श्रम का व्यापक तौर पर इस्तेमाल किया जाता है), रेडीमेड गारमेंट असेंबली— में लगे हैं, वे वास्तव में हाड़तोड़ परिस्थितियों में काम करते हैं। इसकी एक खास मिसाल के तौर पर गारमेंट सेक्टर को लें, जहां 2004 में अंतर्राष्ट्रीय मल्टी-फाइबर व्यवस्था के खात्मे के बाद तीव्र हुई अंतर्राष्ट्रीय होड़ के माहौल में, यहां की कार्य स्थितियों में और रोजगार की शर्तों में और ज्यादा गिरावट आई है। फलस्वरूप मजदूरी घटी है और असुरक्षा बढ़ी है। भारतीय उद्योग को बांग्लादेश और चीन समेत अन्य एशियाई देशों से कड़ी प्रतियोगिता झेलनी पड़ रही है, और इसका समूचा बोझ मजदूरों के कंधों पर लाद दिया जाता है।

## चाय बागान मजदूर

41. चाय बागानों में मजदूर कम मजदूरी और ट्रेड यूनियन अधिकारों के व्यवस्थित उल्लंघन के माहौल में काम करते हैं। का. गंगाराम कोल, जो असम के उपेक्षित चाय समुदाय के कल्याण और अधिकारों के लिए दशकों से समर्पित भाव से कार्य कर रहे थे, की हाल में हुई हत्या ने एक बार फिर चाय कंपनियों, राज्य सरकार और प्रबंधन-परस्त सरकार-परस्त ट्रेड यूनियन के नापाक गठबंधन को उजागर कर दिया है। असम संग्रामी चा श्रमिक संघ के

महासचिव और भाकपा(माले) के नेता का. गंगाराम कोल जन वितरण प्रणाली (पीडीएस) में भ्रष्टाचार के खिलाफ, चाय बागान मजदूरों की स्थितियों में सुधार लाने और असम के चाय समुदाय को अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता दिलाने, जिससे कि समुदाय को अनुसूचित जनजाति के लाभ हासिल हो सकें, के लिए एक लोकप्रिय आंदोलन का नेतृत्व कर रहे थे. उत्तर बंगाल के डुअर्स इलाके में, कई चाय बागान बंद पड़े हैं और मजदूर और उनके परिवार भूखों मर रहे हैं. अगस्त 2011 में चाय बागान मजदूर दो दिनों की जोरदार हड़ताल पर गए थे और वे अपने मुद्दों को आंशिक रूप से हल करा पाए थे. हमारे साथी मजदूरी में बढ़ोतरी, कुल अदा मजदूरी- परंपरागत खाद्य व ईंधन लाभों के रूपये में मूल्य को जोड़ते हुए- की अदायगी के आधार पर महंगाई भत्ते (वीडीए) और बोनस का भुगतान और समुदाय व स्थानीय विकास के सवालियों पर निरंतर संघर्ष चला रहे हैं.

## महिला मजदूर

42. आशा और आंगनवाड़ी जैसे क्षेत्रों, जहां केवल महिलाएं ही कार्यरत हैं, के अलावा महिलाएं घरेलू काम, बीड़ी, स्कूलों में मिड-डे मील योजना आदि क्षेत्रों में बहुतायत में हैं, और अन्य कई क्षेत्रों जैसे गारमेंट, स्वास्थ्य, शिक्षा, आईटी और मीडिया व संचार में भी उनकी तादाद अच्छी खासी है। अनेक क्षेत्रों में 'सस्ते और विनम्र' कामगारों की खोज के चलते भी रोजगार में महिलाओं की तादाद बढ़ रही है, और ग्रामीण क्षेत्रों से 'बदहाली में होने वाले पलायन' का एक अच्छा-खासा हिस्सा महिला मजदूरों का है।

43. पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रह और दुर्भावना तथा अक्सर प्रत्यक्ष यौन-उत्पीड़न ने वर्ग-शोषण के साथ मिलकर महिला मजदूरों का जीवन दोगुना कठिन बना दिया है, और ठीक इसी कारण महिलाएं आंगनवाड़ी से लेकर विभिन्न एयरलाइन्स तक, सभी जगह संघर्ष में उठ खड़ी हो रही हैं। ऐपवा और ऐक्टू दोनों को, जहां कहीं संभव हो आपस में मिलकर, उभरते महिला मजदूरों के दस्ते को सभी संभव तरीकों से प्रोत्साहित करना होगा और मदद देनी होगी ताकि वे संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए लड़ सकें। सरकार को मजबूर किया जाना चाहिए कि वह महिला मजदूरों की स्थिति को समझने व समग्र अध्ययन के लिए एक समिति का गठन करे और इसकी सिफारिशों को समयबद्ध तरीके से लागू करे।

## संगठित क्षेत्र में श्रमशक्ति में कटौती

44. भारत में संगठित क्षेत्र में 5 प्रतिशत से कम— संख्या के लिहाज से तीन करोड़ से कम— मजदूरों को रोजगार मिला हुआ है, लेकिन यूनियनबद्धता, संघर्ष के अनुभव और इस प्रक्रिया में हासिल अधिकारों के लिहाज से संगठित क्षेत्र के मजदूर भारत के मजदूर वर्ग की केन्द्रशक्ति हैं। नव उदारवादी सुधारों ने संगठित क्षेत्र के प्रमुख हिस्सों के मजदूरों पर लगातार हमला चला रखा है और वे श्रमशक्ति में कटौती और आउटसोर्सिंग के दोहरे दबाव का सामना कर रहे हैं। जहां क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन आंदोलन असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को संगठित करने की कोशिश कर रहा है, वहीं नव उदारवादी हमला संगठित क्षेत्र को विघटित करने की कोशिश में है। इस प्रक्रिया को सबसे अच्छी तरह से रेलवे, दूरसंचार, इस्पात, कोयला, बैंक और बीमा जैसे संगठित क्षेत्र के महत्वपूर्ण स्तंभों पर नजर डालकर समझा जा सकता है।

45. रेल के पहिए रेल मजदूरों की जिंदगी को कुचलते चले जा रहे हैं। रेलवे की बीस लाख से ज्यादा की श्रमशक्ति बेरोकटोक निजीकरण और सफाई, खानपान, सिग्नल, पटरियों और डिब्बों का रखरखाव, उपकरणों का उत्पादन आदि प्रक्रियाओं की आउटसोर्सिंग के चलते आज घटकर दस लाख से कुछ ही अधिक रह गयी है। 2 लाख 40 हजार पद खाली पड़े हुए हैं और स्थायी श्रमशक्ति को चार चरणों में घटाकर 4 लाख तक ले आने की योजना प्रस्तावित है। लेकिन ट्रेनों की संख्या कई गुना बढ़ा दी गई है और उनकी औसत रफ्तार दोगुनी कर दी गई है। इसके कारण रेल-प्रणाली और मजदूरों पर प्रचंड दबाव पड़ रहा है; सेवाओं की बदहाली तथा दुर्घटनाओं में बढ़ोत्तरी इसी का नतीजा हैं।

46. कोयला, इस्पात और दूरसंचार क्षेत्र में भी ऐसे ही हालात हैं। 1973 में जब कोयला क्षेत्र का राष्ट्रीयकरण हुआ था तब 6 करोड़ टन कोयले के उत्पादन के लिए 7 लाख 20 हजार मजदूर नियुक्त थे। अब 3 लाख 50 हजार मजदूर 43 करोड़ 40 लाख टन कोयला उत्पादन करते हैं। हां, जरूर इसमें से 52 प्रतिशत का उत्पादन विभिन्न ठेकेदारों द्वारा नियोजित ठेका मजदूरों के जरिए होता है, जिन्हें यह काम आउटसोर्सिंग में दिया गया है। भिलाई स्टील प्लांट में, प्रति मजदूर वार्षिक उत्पादन 1993 में 116 टन से बढ़कर 2012 में 347 टन हो गया है जबकि मजदूरों को मिलने वाला 'इंसेंटिव' इसी दौर में मूल वेतन व डीए के 47 प्रतिशत से गिरकर 5.44 प्रतिशत हो गया है। दूरसंचार की कहानी भी इसी तरह की है। राज्य द्वारा संचालित बीएसएनएल आजकल 6 करोड़ 50 लाख वायरलेस ग्राहकों और 2 करोड़ 79 लाख लैंडलाइन ग्राहकों

की सेवा करती है, लेकिन मजदूरों की तादाद घटकर तीन लाख से कम रह गई है। नतीजा यह है कि जहां 1983 में 1000 लाइनों पर 50 कर्मचारी होते थे वहीं 2003 में 1000 लाइनों पर मात्र 10 कर्मचारी ही रह गए और आज मात्र 3 कर्मचारी 1000 लाइनों को संभाल रहे हैं !

47. बैंकिंग और बीमा जैसे वित्तीय क्षेत्र के कर्मचारियों ने नवउदारवादी सुधारों के पिछले दो दशकों के दौरान अधिकांश समय में भारतीय अर्थतंत्र के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र का निजीकरण करने तथा (देशी-विदेशी निजी पूंजी के लिये) इन क्षेत्रों का दरवाजा खोलने की कोशिशों का सफल प्रतिरोध किया है। लेकिन शक्तिशाली विदेशी बैंकों और बीमा कंपनियों के प्रवेश के बाद राष्ट्रीयकृत बैंक और बीमा कॉरपोरेशन लगातार पीछे हट रहे हैं, और बीमा कानून (संशोधन) विधेयक, 2008 और बैंकिंग कानून (संशोधन) विधेयक, 2011 के पारित होने के साथ ही निजीकरण की आक्रामकता तेज हो गई है। और अब तो पेंशन फंड रेगुलेटरी एंड डेवलपमेंट अथॉरिटी (पीएफआरडीए) बिल 2011 भी आ गया है, जिसमें पेंशन-पीएफ क्षेत्र में 49 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को मंजूरी देने का प्रावधान है। यह कदम फंड के प्रबंधकों को जहां भी वे चाहें वहां निवेश करने की खुली छूट देगा, जिसका वास्तविक मतलब होगा 'उलटा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश', जहां भारतीय जनता के कठोर मेहनत से कमाए हुए हजारों करोड़ रुपयों के बल पर कारपोरेट और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को शेयर मार्केट की सट्टेबाजी के जरिए भारी मुनाफा कमाने की छूट होगी।

48. भारत में प्रतिरक्षा (डिफेंस) उद्योग का विकास करीब पूरी तरह से सार्वजनिक क्षेत्र के तहत हुआ है। लेकिन निजीकरण और भूमंडलीकरण की प्रवृत्ति ने इस उद्योग को भी नहीं छोड़ा है। आयात पर बढ़ती निर्भरता- पिछले तीन वर्षों से भारत विश्व का सबसे बड़ा हथियार आयातक है- ने प्रतिरक्षा के उत्पादन के स्वदेशीकरण पर असर डाला है। प्रतिरक्षा क्षेत्र- जिसमें मुख्यतः युद्ध-सामग्री कारखाने, प्रतिरक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन और मिलिट्री इंजीनियरिंग सेवाएं शामिल हैं- में आज भी काफी बड़ी संख्या में मजदूर नियोजित है जिनमें ठेका मजदूरों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। प्रतिरक्षा उद्योग में कार्यरत हमारे साथियों का मार्गदर्शन करते हुए, पार्टी के मजदूर वर्ग विभाग और केंद्रीय ट्रेड यूनियन संगठन को बेहतर स्थितियों और अधिकाधिक अधिकारों के लिए संगठित होने और संघर्ष करने में ठेका मजदूरों समेत प्रतिरक्षा कर्मियों के जारी प्रयासों में और भी कारगर ढंग से हस्तक्षेप करने की संभावनाओं को तलाशना चाहिए, नए भर्ती कर्मचारियों के लिए घटे हुए, भेदभावपूर्ण पेंशन के खिलाफ प्रतिरक्षा, रेल और केंद्रीय कर्मचारियों तथा कुछ

राज्य सरकार कर्मचारियों के संघर्ष को सभी केंद्रीय ट्रेड यूनियनों का मजबूत समर्थन मिलना चाहिए.

49. सार्वजनिक क्षेत्र और सरकारी कर्मचारियों के बीच हमारा काम अभी तक बेहद सीमित है। रेलवे में हमने तीन जोनों और एक उत्पादन इकाई में अपनी यूनियन बनाई है, जबकि अन्य जगहों पर हम मुख्यधारा की यूनियनों में काम करना जारी रखे हुए हैं। कोयला और इस्पात क्षेत्र में हमारी यूनियन हैं, लेकिन समय-समय पर संघर्षों में बड़ी संभावना प्रदर्शित करने के बावजूद ये यूनियन अभी तक कुछेक इकाइयों तक सीमित हैं और उनके तेजी से विस्तार तथा महत्तर भूमिका की संभावना का साकार होना अभी बाकी है। बैंकिंग, बीमा और दूरसंचार क्षेत्रों में हमारे साथी मुख्यधारा की वाम नेतृत्व वाली यूनियनों में काम करते हैं। बिहार और झारखंड में राज्य सरकार कर्मचारियों के संघर्षों में हमारी नेतृत्वकारी स्थिति बनी हुई है, तथा उत्तराखंड में हमें उल्लेखनीय समर्थन हासिल है, जिसके अलावा कई राज्यों में हमारे प्रभाव के पॉकेट भी मौजूद हैं। लेकिन इस मोर्चे पर राष्ट्रीय समन्वय विकसित करने का विचार खास आगे नहीं बढ़ सका है। सरकारी कर्मचारियों के आर्थिक सवाल और राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ते हुए, हमें निजीकरण तथा सार्वजनिक सेवाओं के निरंतर महंगे होने और उनकी गिरती गुणवत्ता के खिलाफ संघर्ष में साझा मकसद बनाने के लिए आम लोगों के साथ संबंध स्थापित करने पर जोर देना चाहिए.

50. सार्वजनिक क्षेत्र में हमें अपने काम में ठेका मजदूरों पर सर्वाधिक ध्यान देना होगा, जो अब सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) की कुल श्रमशक्ति के आधे से अधिक हो गए हैं। उनकी संख्या बढ़ने और मूलभूत (कोर) कार्यों में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के बावजूद उन्हें द्विपक्षीय कमेटियों की परिधि से बाहर रखा जाता है, और उद्योग में यूनियनों की मान्यता हेतु मतदान के अधिकार से भी वे वंचित हैं। इसके अलावा प्रबंधन-ठेकेदार गठजोड़ के रोजाना के हमलों का सामना भी उन्हें करना पड़ता है। स्थायी और ठेका दोनों ही किस्म के मजदूरों के तात्कालिक हितों की रक्षा करते हुए भी हमें निजीकरण और निजी-सार्वजनिक सांठगांठ के विरुद्ध दृढ़तापूर्वक लड़ना होगा और भ्रष्टाचार, अन्याय तथा मजदूरों के लोकतांत्रिक हितों पर हमले के खिलाफ साहस के साथ मजदूरों की आवाज बुलंद करनी होगी।

## बीमार और बंद उद्योग

51. असल में तो कुछ ही उद्योग बीमार पड़ते हैं, ज्यादातर पर बीमारी धूर्त उद्योगपतियों और उनके साथ मिलीभगत करने वाली सरकारों के जरिए थोप दी जाती है। इसके अलावा, कोई जरूरी नहीं कि औद्योगिक बीमारी स्थायी किस्म की हो या अपरिवर्तनीय परिघटना हो। बढ़ते वैश्विक एकीकरण के चलते दुनिया के एक हिस्से में आई मंदी का प्रभाव दूसरे हिस्सों में भी महसूस होने लगता है और कई उदीयमान उद्योग अचानक पतन की स्थिति में चले जाते हैं। इसी प्रकार कई तथाकथित अस्त होने वाले उद्योग पुनर्जीवन प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त एक विशेषज्ञ कमेटी ने जूट उद्योग में होने वाले मुनाफे और आगे की संभावनाओं के मद्देनजर स्पष्ट तौर पर इस धारणा को नकार दिया है कि जूट कोई बीमार उद्योग है। फिर भी जूट उद्योग आवश्यक आधुनिकीकरण और तकनीकी उन्नति को नकारने के जरिये जानबूझकर बीमारी को 'पालता-पोसता' है।

52. भारत के औद्योगिक नक्शे पर बंद कारखानों की संख्या अत्यधिक बढ़ने के साथ-साथ बीमार और बंद उद्योगों के वर्तमान और पूर्व-मजदूर अपने आप में एक श्रेणी बनकर उभरे हैं। उनकी तकलीफ का कोई अंत नहीं, लेकिन वे टेक्सटाइल, जूट और इंजीनियरिंग जैसे डूबते हुए उद्योगों में जमीन पर दावे और पीएफ/ग्रेच्युटी के बकाया जैसे नए मुद्दों पर संघर्ष चला कर अपनी जुझारू भूमिका फिर से प्राप्त कर रहे हैं। पश्चिम बंगाल में बड़ी संख्या में सार्वजनिक परिवहन सेवा के मजदूर वेतन और अन्य भुगतान लंबे अरसे से नहीं पा रहे हैं— उनमें से कुछ आत्महत्या भी कर चुके हैं, फिर भी कानूनी तौर पर उन्हें जो बकाया प्राप्य है उसके लिए लड़ाई जारी है। असम में, ऐक्टू और को-ऑर्डिनेशन कमेटी ऑफ ट्रेड यूनियन्स, असम, द्वारा ली गई निरंतर पहलकदमियों की बदौलत 13 बंद सार्वजनिक क्षेत्र इकाइयों के मजदूरों को 2007-2010 के बीच 350 करोड़ रुपये के लाभ हासिल करने में सफलता मिली।

53. अनुभव बताता है कि दृढ़ संघर्ष के जरिए बंद मिलों के पूर्व-मजदूर भी अपनी प्राप्य राशि का कम-से-कम कुछ अंश तो हासिल कर ही सकते हैं। मसलन, मुंबई के टेक्सटाइल मजदूरों ने 1982 की ऐतिहासिक हड़ताल की पृष्ठभूमि में जो जमीन खो दी थी, उसे तीन दशक बाद पुनः प्राप्त करने में वे सफल हुए हैं। वे संगठित हुए और उन्होंने अदालती लड़ाई सहित संघर्ष के विभिन्न तरीके अपनाए। महाराष्ट्र सरकार अंततः मजदूरों को पुनर्वास का वादा करने को मजबूर हुई। उनमें से 6,948 मजदूरों को मिल की जमीन पर



बने फ्लैट रियायती दर पर मिल चुके हैं (मजदूरों को मुफ्त फ्लैट देने के वादे से मुकरते हुए सरकार ने मजदूरों से 7.5 लाख रुपये प्रति फ्लैट बतौर कीमत वसूल किये हैं) लेकिन अभी भी 1,40,000 मजदूरों का अपने पुनर्वास के लिये संघर्ष जारी है। इसी तरह गौरीपुर जूट मिल (उत्तरी 24 परगना, पश्चिम बंगाल) के मजदूरों को बरसों के अनवरत संघर्ष के बाद, जिसमें अदालती लड़ाई समेत मिल के इलाके में प्रचार एवं आंदोलन भी शामिल हैं, बकाया पेंशन और पीएफ का एक हिस्सा पाने में कामयाबी मिली है। अब ग्रेच्युटी और सभी मजदूरों को बीपीएल योजना में शामिल करने जैसे अन्य मुद्दों पर लड़ाई जारी है।

## खतरनाक उद्योग, और अमानवोचित काम

54. पटाखा फैक्टरियों से लेकर अवैध खनन और जोखिम भरे निर्माण कार्य तक, खतरनाक उद्योगों की समस्या विकराल है। फैक्टरियों में आग लगने से बच्चों और महिलाओं की मौत या निर्माण स्थलों पर निर्माण मजदूरों के घातक रूप से घायल होने की घटनाएं आए दिन घट रही हैं। राष्ट्रीय राजधानी में आधुनिक शहरी परिवहन के शो-पीस दिल्ली मेट्रो के निर्माण के दौरान सैकड़ों मजदूरों की जान गई। फिर एस्बेस्टस के प्लांट और विभिन्न केमिकल कारखाने आदि उद्योग हैं जो जानलेवा बीमारियां और जहरीला धुआं फैला रहे हैं। क्रांतिकारी मजदूर वर्ग आंदोलन को अवश्य ही औद्योगिक सुरक्षा और मजदूरों के स्वास्थ्य व स्वच्छता के सवालों को रोजगार और मजदूरी के मुद्दों के माफिक ही गंभीरता से उठाना चाहिए।

55. श्रम के सम्मान के लिए लड़ते हुए, क्रांतिकारी मजदूर वर्ग आंदोलन को अवश्य ही अमानवोचित समझे जाने वाले कामों के उन्मूलन और ऐसे कामों से जुड़े मजदूरों के उचित पुनर्वास के लिए लड़ना चाहिए। बड़े-बड़े सरकारी दावों के बावजूद, मैला ढोने की प्रथा भारत के कई हिस्सों में आज भी एक कठोर सच्चाई है और हमें अवश्य ही इस अमानवीय प्रथा के तत्काल व पूर्ण उन्मूलन और मुक्त हो चुके मैला ढोने वालों के उचित पुनर्वास के सवालों को उठाना चाहिए। इसी तरह, कोलकाता में वैकल्पिक रोजगार और उचित पुनर्वास की योजनाओं के न होने के चलते आज भी हाथ-रिक्शो चल रहे हैं। सभी किस्म के अमानवोचित कामों और बंधुआगारी के सभी रूपों का उन्मूलन क्रांतिकारी मजदूर वर्ग आंदोलन के एजेंडा का प्रमुख हिस्सा है।

## उभरते हुए सेक्टरों के मजदूर

56. आईटी सेक्टर, आई.टी. से जुड़ी विभिन्न सेवाएं, बीपीओ, कॉल सेंटर, वित्तीय सेवाएं, सेल्स और मीडिया एवं कम्युनिकेशन (संचार) शिक्षित युवाओं के लिए रोजगार के नए एवं महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उभरे हैं। इन नए सेक्टरों ने तमाम किस्म के कामों को पैदा किया है लेकिन इनमें से अधिकतर बेहद शोषणकारी और असुरक्षित हैं। काम के घंटों का कोई नियमन नहीं है और बहुत से मजदूरों को एक दिन में 12 या उससे भी अधिक घंटों तक खटना पड़ता है। इन सेक्टरों को 'अत्यावश्यक सेवाओं' की श्रेणी में लाकर ट्रेड यूनियन अधिकारों को दबाने की कोशिश की जाती है, लेकिन इन दमघोंटू स्थितियों के बावजूद आईटी श्रमिक अपने अधिकारों के लिए संगठित होने और लड़ने के उत्साहवर्द्धक लक्षण दर्शा रहे हैं। मजदूर वर्ग आंदोलन में ऐसी बेहद कुशल और बौद्धिक रूप से आगे बढ़ी हुई श्रम-शक्ति का प्रवेश एक उत्साहित करने वाली संभावना है जिसे हकीकत में बदलने की पुरजोर कोशिश कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को अवश्य करनी चाहिए।

## सर्वहारा के कार्यभार और कम्युनिस्ट भविष्यदृष्टि

57. अपने वर्ग शत्रु और राज्य के विरुद्ध संघर्ष में मजदूर अकेले नहीं हैं। बढ़ते हुए कारपोरेट-राज्य हमले के विरुद्ध मेहनतकश जनता के सभी अन्य तबके, खासकर, किसान और आदिवासी तथा युवा, मध्य वर्ग, बुद्धिजीवी और अन्य तमाम तबके अपने अधिकारों, अपनी जमीन, अपनी आजीविका और अपनी आजादी को बचाने के लिए लड़ रहे हैं। जहां बड़ा पूंजीपति वर्ग जन-विरोधी कारपोरेट, सामंती और साम्राज्यवादी ताकतों के गठजोड़ का नेतृत्व कर रहा है, वहीं सर्वहारा वर्ग को समस्त मेहनतकश जनता के जुझारू मोर्चे का नेतृत्व करना होगा, उसे एक हाथ लड़ाकू किसान समुदाय की ओर तो दूसरा जनता के सभी तबकों के जनवादी संघर्षों की ओर बढ़ाना होगा।

58. लेकिन यह काम सुधारवादी और प्रतिक्रियावादी ट्रेड यूनियनों या ऐसे अन्य संगठनों द्वारा "कठिन स्थिति" व "रक्षात्मक लड़ाई का दौर" के नाम पर फैलाए जा रहे रक्षात्मक नजरिए को चुनौती दिए बिना नहीं सम्पन्न किया जा सकता। द्वंद्ववात्मक रूप से हरेक हमले में रक्षा और हरेक रक्षा में हमले का तत्व होता है। मेहनतकश जनता को यह तथ्य बताना होगा कि पूंजी के नये हमले असल में पूंजी की कमजोरी, उसकी गंभीर समस्याओं से पैदा हुए हैं न कि उसकी ताकत से, और इसीलिए यह जोरदार हमला बोलने का समय

है। यही वह समय है जब मेहनतकशों की व्यापक जुझारू एकता बहादुराना प्रतिरोध पैदा कर सकती है, गैर-सर्वहारा तबकों से नए संश्रयकारियों को गोलबंद किया जा सकता है और अंतिम विजय के क्षण को नजदीक लाया जा सकता है— जनता में यह विश्वास जगाना सबसे अगुवा वर्ग की सर्वाधिक जरूरी जिम्मेदारी है।

59. मजदूर वर्ग को इस उच्चतर राजनीतिक चेतना और भूमिका की समझ से लैस करना उसके अगुवा क्रांतिकारी दस्ते, कम्युनिस्ट पार्टी की जिम्मेदारी है। लेकिन राजनीतिक चेतना को विकसित करना ऊपर से बनावटी तौर पर किसी किस्म की सक्रियता लाद देने या अमूर्त तरीके से राजनीतिक शिक्षा देने में निहित नहीं है। इसके लिए सर्वाधिक जरूरी है कि हम मजदूर वर्ग को उसकी जिंदगी की वास्तविक चुनौतियों को हल करने के क्रम में धीरे-धीरे उनकी चेतना उन्नत करने में मदद करें— जो दरअसल पूंजी के शासन को उखाड़ फेंकने के ऐतिहासिक लक्ष्य की चेतना है। इस मकसद के लिए हमारे ट्रेड यूनियन केंद्र को अपनी राजनीतिक भूमिका बढ़ानी होगी: उदाहरणार्थ, मजदूरों, किसानों, महिलाओं के संघर्षों के समर्थन में एकजुटता की कार्यवाही करनी होगी और औद्योगिक क्षेत्रों की पार्टी कमेटियों को 'मजदूर वर्ग का राजनीतिकरण' जैसे मुहावरों से आगे बढ़कर व्यवहार में ऐसी जमीनी कार्यपद्धति विकसित करनी होगी जो फैक्टरी/उद्योग आधारित और इलाकावार राजनीतिक गतिविधियों के साथ पार्टी निर्माण को जोड़ सके, जिस प्रक्रिया में हमारे तमाम जन-संगठन भी काम में लगें।

60. वैचारिक जोर के लिहाज से पार्टी को ट्रेड यूनियन काम को दिशा देने और मजबूत करने के साथ-साथ वाम आंदोलन में गहरे जड़ जमाए बैठी उस प्रवृत्ति से मजबूती से लड़ना होगा जो मजदूर वर्ग आंदोलन को महज ट्रेड यूनियन संघर्ष तक सीमित कर देती है। लेनिन ने अपनी शास्त्रीय रचना "क्या करें?" के 'लोकतंत्र का अगुवा योद्धा मजदूर वर्ग' शीर्षक अध्याय में लिखा "मजदूर वर्ग की ट्रेड यूनियनवादी राजनीति वास्तव में मजदूर वर्ग की बुर्जुआ राजनीति है"। उन्होंने सचेतन तत्व पर— क्रांतिकारी राजनीति और पार्टी निर्माण— जोर दिया है। उन्होंने जोर देकर कहा है कि जन आंदोलन की स्वतःस्फूर्तता जितनी ही व्यापक होगी, उतनी ही ज्यादा जरूरत सैद्धांतिक, राजनीतिक और सांगठनिक अर्थों में कम्युनिस्टों की सचेतन भूमिका की होगी। बढ़ती उथलपुथल भरी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी को इस लेनिनवादी सीख को सच्ची गंभीरता के साथ बुलंद करना होगा।



# कृषि एवं अन्य ग्रामीण संघर्षों के बारे में

1. कृषि संकट का विस्तार और उसका गहराना जारी है। इस संकट के किसी भी संरचनात्मक आयाम को, चाहे कृषि क्षेत्र में सार्वजनिक निवेश बढ़ाकर या खेतिहर आबादी को बेहतर संरचनात्मक सुविधाएं तथा सस्ते और आसान कर्ज उपलब्ध कराकर या भूमि और अन्य कृषि संबंधों में प्रगतिशील सुधार लागू करके, जो वास्तविक उत्पादकों के हालात में बेहतरी ला सकें, संबोधित करने के बजाय केंद्र और राज्य सरकारें कृषि क्षेत्र में नवउदारवादी नीतियों को थोप रही हैं जिसके परिणामस्वरूप भारतीय कृषि और ग्रामीण मजदूरों समेत वास्तविक उत्पादकों का संकट और भी गहरा रहा है।

2. आम तौर पर चुनावों के दौरान वोट बटोरने की तरकीब के बतौर कभी-कभार सरकार द्वारा की जाने वाली कर्जमाफी की घोषणाओं जैसे सांकेतिक सरकारी कार्रवाइयां कर्ज के बोझ से छलनी किसानों को किसी किस्म की राहत देने में नाकाम साबित हुए हैं और किसानों की आत्महत्या की शर्मनाक घटनाएं अबाध गति से जारी हैं। 1995 से लेकर अब तक किसानों द्वारा की गई आत्महत्याओं की संख्या तीन लाख को पार कर चुकी है और आत्महत्याओं को रोकने के सरकारी वादों के बावजूद, हर 30 मिनट में कम-से-कम एक आत्महत्या दर्ज हो रही है जैसा कि न्यूयार्क यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ लॉ के सेन्टर फॉर ह्यूमन राइट्स एण्ड ग्लोबल जस्टिस द्वारा किये गये “ऐवरी थर्ड मिनिट्स- फार्मर्स सुसाइड्स, ह्यूमन राइट्स एण्ड द एग्रेरियन क्राइसिस इन इण्डिया” शीर्षक दिल दहलाने वाले अध्ययन में दर्ज किया गया है। अगर

हम किसान परिवारों के सदस्यों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं को भी जोड़ दें तो यह संख्या बहुत ज्यादा बढ़ जायेगी. भुखमरी से होने वाली मौतों का सिलसिला भी जारी है. जहां राज्य भुखमरी से मौत होने की घटनाओं को स्वीकार करने से डर रहा है, वहीं यह स्थापित तथ्य है कि स्थायी भुखमरी और कुपोषण भारत में होने वाली मौतों का सबसे बड़ा कारण है, जिससे प्रति वर्ष बीस लाख से ज्यादा लोग मौत के मुंह में समा जाते हैं.

3. खेती लायक भूमि का बड़े पैमाने पर अधिग्रहण- अक्सर जबरिया और धोखाधड़ी भरे तरीकों से- और लगातार उसके गैर-कृषि कार्यों के लिए उपयोग से खाद्य सुरक्षा को गंभीर खतरा पैदा होना शुरू हो चुका है। मिट्टी के क्षरण, जमीन के रेगिस्तान में बदल जाने और खारेपन में बढ़ोत्तरी जैसी समस्याओं के चलते तथा मिट्टी में सुधार एवं खेती योग्य भूमि के उद्धार को सुनिश्चित करने के योजनाबद्ध एवं कारगर उपायों के अभाव में कुल खेती लायक भूमि की उपलब्धता और भी घटती जा रही है. खाद्यान्न उत्पादन में आत्म-निर्भरता के लम्बे-चौड़े दावे किये जा रहे थे, लेकिन सच्चाई यह है कि हम खाद्यान्न के आयात पर और ज्यादा निर्भर होते जा रहे हैं। 2000 के बाद दुनिया भर की जमीन की खरीद-फरोख्त के एक अध्ययन के मुताबिक भारत में 46 लाख हेक्टेयर (दुनिया भर में अनुमानित 7 करोड़ 2 लाख हेक्टेयर) भूमि विनष्ट हुई है और खेती लायक भूमि का विनाश करने वाले देशों में यह सबसे ऊपर के 10 देशों में शामिल है।

4. देश भर में किसानों और आदिवासियों के सशक्त प्रतिरोध के चलते केंद्र और राज्य सरकारों को कुछेक सर्वाधिक बदनाम भूमि अधिग्रहण की परियोजनाओं को छोड़ना अथवा टालना पड़ा है. पश्चिम बंगाल में नंदीग्राम, उड़ीसा में जगतसिंहपुर (पोस्को) और नियमगिरि (वेदांत), महाराष्ट्र में रायगढ़ (रिलायंस) इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। हाल ही में, महाराष्ट्र सरकार को चार बड़ी प्रस्तावित सेज (विशेष आर्थिक क्षेत्र) परियोजनाओं को रद्द करने के लिए मजबूर होना पड़ा है जिसमें करीब 9000 एकड़ भूमि का अधिग्रहण होना था। कुछ मामलों में, जिन लोगों की जमीन छीनी गई थी वे बेहतर कीमत या क्षतिपूर्ति पैकेज हासिल कर पाये। लेकिन ऐसे भी मामले बहुत हैं जिनमें जमीन मुकदमेबाजी में फंस गई, हालांकि जिन परियोजनाओं के लिए जमीन ली गई थी वे शुरू नहीं हो सकीं. सिंगूर इसका सबसे उल्लेखनीय उदाहरण है।

5. फिर भी, जहां किसानों और आदिवासियों को कुछेक जगहों पर अधिग्रहण को स्थगित करने या रोकने में कामयाबी मिली है, वहीं अन्य इलाकों में जमीनों पर हमला जारी है. व्यापक प्रतिवादों को अनसुना करते

हुए ओडिशा सरकार ने पोस्को के लिये बलपूर्वक भूमि अधिग्रहण करने के लिये पुलिस दमन का सहारा लिया है, और देश के उत्तर-पश्चिमी भाग में केन्द्र एवं राज्य सरकारें 1,483 किमी लम्बी दिल्ली-मुम्बई औद्योगिक कॉरिडोर परियोजना के लिये विशाल पैमाने पर भूमि अधिग्रहण का अभियान जबर्दस्ती चलाने में व्यस्त हैं। बिजली परियोजनाओं के निर्माण तथा प्राकृतिक उद्यानों एवं इको-पर्यटन जोन विकसित करने के नाम पर बड़े पैमाने पर भूमि अधिग्रहण और बेदखली जारी है। पर्वतीय राज्य उत्तराखंड में, जहां कृषि भूमि कुल जमीन का महज 10% है, कुल 558 जल-विद्युत परियोजनाओं का निर्माण किया जा रहा है जिनमें अकेले टेहरी बांध के फलस्वरूप 1.5% कृषियोग्य भूमि पानी में डूब गई है और उसी अनुपात में राज्य की आबादी की बेदखली भी हुई है। तटीय तमिलनाडु में 84000 एकड़ से अधिक जमीन तापीय बिजली घरों और पेट्रोकेमिकल उद्योगों द्वारा अधिग्रहीत की जा रही है। और समूचे देश में भूमिअधिग्रहण सड़कों को चौड़ा करने तथा बिजली घर लगाने या निजी विश्वविद्यालयों व कॉलेजों की स्थापना के नाम पर हो रहा है।

6. अनेक जगहों पर वन्य-जीवन संरक्षण, टाइगर प्रोजेक्ट और पर्यटन को बढ़ावा देने के नाम पर जनता की बेदखली हो रही है। असम में कार्बी आंग्लोंग, बंगाल में सुन्दरबन और बिहार में पश्चिमी चम्पारण इसके तीन उदाहरण हैं (हालांकि बाघों की आबादी निरंतर घट रही है, पश्चिमी चम्पारण में बाल्मीकि नगर में 1997 में 54 बाघ थे जबकि 2010 में महज 7 रह गये हैं!)

7. राज्य को भूमि अधिग्रहण के लिए भारी राजनीतिक कीमत चुकानी पड़ी है। इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण सिंगूर और नंदीग्राम में पैदा व्यापक विक्षोभ और किसान प्रतिरोध के चलते पश्चिम बंगाल में माकपा-नीत वाम फ्रंट सरकार की भारी पराजय के रूप में सामने दिखा है। इसीलिए शासक वर्ग जबरिया भूमि अधिग्रहण में राज्य की सीधी भूमिका को लेकर अब सतर्क हो गये हैं। यूपीए मंत्रिमंडल ने जिस संशोधित भूमि अधिग्रहण विधेयक को मंजूरी दी है, उसमें भूमि अधिग्रहण के मामले में कारपोरेट क्षेत्र को ही सीधे मुख्य भूमिका दे दी गई है, जबकि राज्य इसमें बेहतर क्षतिपूर्ति दिलाने का वादा करने वाले मददगार की भूमिका निभाएगा। भारतीय कृषि और भूमि पर निर्भर आबादी के विरुद्ध वस्तुतः युद्ध की घोषणा करने वाले दो कानूनों, 1894 के कुख्यात भूमि अधिग्रहण विधेयक और 2005 के सेज विधेयक, को खत्म करने के बदले सरकार भूमाफिया, बड़े-बड़े रीयल एस्टेट कारोबारियों एवं अन्य कारपोरेट हितों को भूमि हड़पने की खुली छूट देना चाहती है। हरियाणा और राजस्थान में राबर्ट वाड्रा-डीएलएफ के बीच हुआ सौदा तथा महाराष्ट्र में

पूर्व भाजपा अध्यक्ष नितिन गडकरी द्वारा संचालित कंपनियों द्वारा जमीन की सौदेबाजी से स्पष्टतः जाहिर होता है कि एक ऐसे समय में, जब उत्पादन के अनेक प्रमुख क्षेत्रों में पूंजी गहरे और दीर्घकालीन संकट का सामना कर रही है, तो धड़ल्ले से जारी 'जमीन कब्जे की होड़' को किस हद तक राजनीतिक संरक्षण मिल रहा है।

8. इस 'जमीन कब्जे की होड़' का प्रतिरोध करना तथा कारपोरेट सेक्टर के पंजों से खेती की जमीन को बचाना देश भर के किसान आंदोलन का एक प्रमुख एजेंडा बन गया है। बहरहाल, इस प्रतिरोध में किसान अकेले नहीं हैं— अनुभव दिखाता है कि भूमि अधिग्रहण विरोधी संघर्ष तकरीबन हमेशा ही व्यापक और जुझारू प्रकृति ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रतिरोध में आदिवासी समुदाय भी बहादुराना भूमिका निभा रहे हैं। खनिज संपदा वाले इलाकों में, जहां भारत की आदिवासी आबादी की बहुसंख्या का निवास है, वहां भूमि अधिग्रहण और खनिज संपदा की लूट एक ही सिक्के— कारपोरेट लूट और बलपूर्वक संचय— के दो घिनौने पहलू बनकर उभरे हैं, जिसके चलते आदिवासियों को सुनियोजित ढंग से उनके घरों से उजाड़ा जा रहा है। इसीलिए खेती की जमीन बचाने के आंदोलन को आदिवासी जनता के विस्थापन विरोधी संघर्ष के साथ घनिष्ठ सहयोग बनाकर चलाना होगा, जिसके निशाने पर भूमि एवं खनन— दो जुड़वां माफिया होंगे और खेती एवं जंगल की जमीन की कानूनी हिफाजत करने तथा समस्त खनिज संसाधनों के राष्ट्रीयकरण की मांग वह रणनीतिक मांग होगी, जिसके इर्द-गिर्द मेहनतकश अवाम के व्यापक हिस्सों को एकताबद्ध संघर्षों में गोलबंद करना होगा।

9. इसीलिए खेती की जमीन को बचाने और खेती पर निर्भर आबादी तथा आदिवासी जनता के अधिकारों की रक्षा के कार्यभार को हमें अवश्य ही जनोन्मुखी विकास की रणनीति के लिए व्यापक लड़ाई के जरूरी और अभिन्न अंग के बतौर लेना होगा, यह वर्तमान कारपोरेटपरस्त विनाशकारी विकास की उस दिशा के खिलाफ होगी जो आम तौर पर कृषि को और खास तौर पर छोटे पैमाने की खेती को गैर-जरूरी बोझ मानती है। हमारे कामकाज के इलाकों में बलपूर्वक भूमि अधिग्रहण के हर मामले में सक्रिय प्रतिरोध विकसित करते हुए हमें अधिग्रहण विरोधी संघर्ष में अपने हस्तक्षेप को व्यापक और गहरा बनाने के लिये चौतरफा प्रयास चलाना होगा और संघर्षरत जनता के साथ घनिष्ठ सम्बंध कायम करना होगा। जंगलों व आदिवासी रिहायश के इलाकों में हमें गैरकानूनी भूमि हस्तांतरण के विरोध में तथा भूमि संरक्षण कानूनों (मसलन झारखण्ड में छोटा नागपुर टीनेन्सी एक्ट और सन्थाल परगना टीनेन्सी एक्ट)



तथा पी.ई.एस.ए. कानून 1996 और फारेस्ट राइट्स ऐक्ट 2006 के प्रावधानों को कड़ाई से लागू करने के सवाल पर आदिवासियों के साथ खड़ा होना होगा।

10. राज्य ने भूमि पुनर्वितरण वाले भूमि सुधार के एजेंडे को वस्तुतः त्याग दिया है। इस एजेंडे पर जबानी जमाखर्च के लिये कभी कभार केंद्र और राज्य सरकारें आयोगों का गठन करती हैं, लेकिन इन आयोगों की रपटों को जल्द ही रद्दी की टोकरी में डाल दिया जाता है। जनवरी 2008 में प्रधानमंत्री के नेतृत्व में गठित राष्ट्रीय भूमि सुधार परिषद (नेशनल कौंसिल फॉर लैंड रिफार्म्स) की 2012 के अंत तक एक भी बैठक नहीं हुई, और राज्यों में भूमि सम्बंध एवं भूमि सुधार के अधूरे कार्यभार सम्बंधी समिति (कमेटी ऑन स्टेट एग्रेग्रियन रिलेशंस एंड द अनफिनिशड टास्क इन लैंड रिफार्म्स) की संस्तुतियां आज भी धूल फांक रही हैं। बिहार में नीतीश कुमार की सरकार ने बंदोपाध्याय आयोग की न्यूनतम संस्तुतियों को भी लागू करने से किनारा कर लिया। वनाधिकार कानून (फारेस्ट राइट्स ऐक्ट) 2006 का बहुत ढोल पीटा गया लेकिन वह वस्तुतः कोई भूमि सुधार कानून है ही नहीं ; वह तो महज जंगल में कम-से-कम 75 साल से रहने वाले लोगों और आदिवासियों के कब्जे की जमीन को कानूनी मान्यता देता है। लेकिन इस कानून का क्रियान्वयन से ज्यादा उल्लंघन ही होता है।

11. जहां भूमि पुनर्वितरण संबंधी सुधार तो छोड़ ही दिए गए हैं, सरकार द्वारा अथवा दशकों के भूमि संघर्षों की बदौलत जो भी भूमि सुधार हुए हैं उन्हें उलट देने तथा गरीब किसानों को जो कुछ भी मिला है उसे वापस छीन लेने के लिये वस्तुतः एक अभियान चलाया जा रहा है। क्रांतिकारी किसान आंदोलन को भूमि संघर्षों की उपलब्धियों की साहसपूर्वक रक्षा करनी होगी और सभी मौजूदा भूमि सुधार कानूनों को कड़ाई से लागू करने, हदबंदी से फाजिल, बेनामी, गैर-कानूनी कब्जे की जमीन के पुनर्वितरण, भूमि-हदबंदी को घटाने, अनुपस्थित जमींदारी और मंदिरों तथा ट्रस्टों के नाम पर जमीन को हड़पने एवं भूमि-संकेंद्रण के खात्मे तथा बासगीत जमीन का हक दिलाने के लिए दबाव बनाकर भूमि सुधार के एजेंडे को आगे बढ़ाना होगा।

12. बटाईदारी सुधार और बटाईदारों के अधिकार के सवाल को क्रांतिकारी किसान आंदोलन के एजेंडे में अवश्य ही प्रमुख स्थान देना होगा। बटाईदारों को मालिकाना हक देने के बदले बटाईदारी सुधार के आधिकारिक मॉडल ने इस एजेंडे को बटाईदारी की सुरक्षा और शर्तों में सुधार के मुद्दे तक सीमित कर दिया। लेकिन सरकारें अनिवार्य पंजीकरण, खेती के हक का उत्तराधिकार और जमीन के मालिकों को मिलने वाली सब्सिडी और सुविधाओं जैसे न्यूनतम

अधिकारों को भी बटाईदारों के लिए सुनिश्चित करने में अक्षम रही हैं।

13. बटाईदारी के रूप और व्यवहार में पिछले कुछ दशकों में बड़े बदलाव आये हैं। बटाईदारी की व्यवस्था क्रमशः मौद्रिक लगान की प्रणाली में बदलती जा रही है और उसकी अवधि भी अधिकाधिक मौसमी होती जा रही है। बटाईदार, जो अक्सर भूस्वामियों पर न सिर्फ जमीन के लिये बल्कि ऋण एवं अन्य लागत सामग्रियों के लिये भी निर्भर रहते हैं, अंततः विभिन्न हदों एवं विविध रूपों में गुलामी के बंधनों में बंध जाते हैं। अक्सर मंदिरों एवं धार्मिक ट्रस्टों के मैनेजर क्रूर जमींदार की भांति व्यवहार करते हैं और बटाईदारों के साथ अपनी 'प्रजा' जैसा सलूक करते हैं। बिहार और अन्य अनेक राज्यों में जहां बटाईदारी कानून वस्तुतः लागू ही नहीं हुए हैं, वहां बटाईदारी जबानी और प्रच्छन्न बनी हुई है। लगान के नियमन की कोई व्यवस्था नहीं है और बटाईदारों को कर्ज, सब्सिडी, सरकार द्वारा तय कीमत पर फसल की बिक्री, या फसल बीमा तथा फसल चौपट हो जाने की हालत में क्षतिपूर्ति जैसी सुविधाएं हासिल नहीं हैं।

14. बिहार में सामंती ताकतें छोटे भूमिधरों में डर पैदा करके बंद्योपाध्याय आयोग की बटाईदारी पंजीकरण और सुधार सम्बंधी सिफारिशों को रोकने में सफल रहीं जबकि बटाईदार इतने संगठित और आश्वस्त नहीं थे कि सामंती हमले का मुंहतोड़ जबाब दे सकें। बटाईदारों को उनके हितों को नुकसान पहुंचाने वाले हरेक सवाल के इर्द-गिर्द व्यवस्थित रूप से संगठित करना होगा और सरकार पर उनकी मांगों को पूरा करने तथा उनके हक को मान्यता देने के लिए दबाव डालना होगा। अगर हम लगातार और कष्टसाध्य प्रचार एवं आंदोलन चलाकर बटाईदारों के बीच विश्वास पैदा कर सकें तो बटाईदार संघर्षों में भारी उत्साह तथा दृढ़ता दिखलाते हैं। बटाईदारों को संकल्पबद्ध संघर्षों में कारगर ढंग से गोलबंद करते हुए सामंती हमलों एवं राज्य द्वारा उपेक्षा को मुंहतोड़ जबाब देना क्रांतिकारी किसान आंदोलन को अपना एक कार्यभार बना लेना होगा।

15. मई 2010 में अखिल भारतीय किसान महासभा का गठन सर्वव्यापी कृषि संकट तथा कृषि में बढ़ती कारपोरेट-साम्राज्यवादी घुसपैठ के समक्ष छोटे किसानों की खेती को बचाने के लिए समूचे देश के पैमाने पर किसान आंदोलन को पुनरुज्जीवित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। किसान महासभा ने जबरिया भूमि अधिग्रहण के खिलाफ और वनवासियों एवं भूमिहीनों के लिये जमीन पर अधिकार हासिल करने तथा सिंचाई, बिजली, डीजल, बीज, उर्वरक और लाभकारी मूल्य पर फसल और दूध की सीधे उत्पादकों

से खरीदारी और बिचौलियों की जकड़बंदी से उनकी आजादी जैसे मुद्दों पर प्रचार और आंदोलन करते हुए कृषि संकट के विविध आयामों पर प्रतिक्रिया जाहिर करना शुरू किया है।

16. समय-समय पर राष्ट्रीय स्तर पर अभियान चलाने के साथ-साथ हमें व्यापक उत्पीड़ित किसान समुदाय को शामिल करते हुए तथा गरीब व मध्यम किसानों एवं बटाईदारों को उनके विशेष मुद्दों पर संगठित करते हुए मजबूत एवं जुझारू स्थानीय संघर्ष खड़ा करने के काम पर सबसे अधिक ध्यान देना होगा। चाहे खाद, पानी और बिजली जैसी लागत सामग्रियों की समय पर उपलब्धता का मुद्दा हो, या फसलों की कीमत तय करने अथवा सरकार द्वारा तय किये गये न्यूनतम समर्थन मूल्य पर फसलों की बिक्री का सवाल हो, किसान देश भर में प्रतिवादों में उमड़ रहे हैं और हमें इसमें कारगर ढंग से और शीघ्रता से हस्तक्षेप करना होगा तथा प्रशासन को मजबूर करना होगा कि वह मांगों को जल्द हल करे। हमें इस बात की गारंटी करनी होगी कि किसान महासभा किसान संघर्ष के ऐसे लोकप्रिय मंच के रूप में उभरे जिसे निरंतर जारी सशक्त किसान आंदोलनों के इलाकों अथवा पट्टियों से ताकत मिलती हो।

17. कृषि संकट तथा खेती के बढ़ते कारपोरेटीकरण और मशीनीकरण की प्रवृत्ति से कृषि में रोजगार घटता गया है। 21वीं सदी के पहले दशक में कृषि रोजगार में 0.13% वार्षिक की दर से गिरावट आयी है। दशक के उत्तरार्ध में यह गिरावट अधिक दिखाई पड़ी और इसकी दर 1.63% रही। इस अवधि में (वर्ष 2004-05 से लेकर 2009-10 तक) गैर-कृषि ग्रामीण अर्थतंत्र में आपेक्षिक विस्तार के चलते कुल ग्रामीण रोजगार 2.8% प्रति वर्ष की दर से बढ़ा है। यह बदलता हुआ पैटर्न ग्रामीण राष्ट्रीय घरेलू उत्पाद की संरचना (जहां खेती का हिस्सा लगातार गिरता गया और गैर-कृषि क्षेत्र का हिस्सा 1970-71 में 28% से बढ़कर 2004-05 में 62% हो गया) और ग्रामीण रोजगार के ढांचे (गैर-कृषि गतिविधियों में रोजगार 1972-73 में 2 करोड़ 85 लाख 10 हजार यानी कुल के 15% से बढ़कर 2009-10 में 10 करोड़ 75 लाख 10 हजार यानी 32% हो गया) में प्रतिबिंबित हो रहा है। ग्रामीण क्षेत्र के प्रमुख गैर-कृषि रोजगार हैं व्यापार, निर्माण, यातायात और वित्तीय सेवाएं तथा स्वास्थ्य-सेवा, शिक्षा एवं अन्य सामाजिक क्षेत्रों में कार्यरत अर्ध-सरकारी या पैरा-सरकारी एजेन्सियां हैं।

18. लेकिन फिर भी गैर-कृषि ग्रामीण अर्थतंत्र बढ़ते हुए ग्रामीण श्रम बल को खपाने की स्थिति में नहीं है, इसलिए बेरोजगारी और दूसरे राज्यों में पलायन में बढ़ोत्तरी हुई है। मछली पालन, डेयरी, मुर्गी पालन, फलोत्पादन, फूलों की खेती जैसे खेती से जुड़ी हुई गतिविधियां भी संकट में हैं और लघु उद्यमियों को बड़े कारपोरेट खिलाड़ियों के मुकाबले अपने जिन्दा रहने के लिए असमान लड़ाई लड़ने को मजबूर होना पड़ रहा है। हमें खेत-मजदूरों पर केंद्रित करते हुए भी गैर-कृषि ग्रामीण मजदूरों एवं अन्य कामगारों को उनकी तात्कालिक मांगों के इर्द-गिर्द संगठित करने के कार्यभार पर अधिकाधिक ध्यान देना होगा। ग्रामीण निर्माण और बालू खनन क्षेत्र (बिहार में), राइस मिल के मजदूरों (कर्नाटक में) और कोल्ड स्टोरेज के मजदूरों (पश्चिम बंगाल में) तथा कई राज्यों में आशा, आंगनवाड़ी और मध्याह्न-भोजन योजनाओं जैसे सामाजिक क्षेत्रों में कार्यरत महिला मजदूरों के बीच काम की अच्छी शुरुआत हुई है।

19. देश के अधिकांश हिस्सों में खेत मजदूरों की मजदूरी अब भी बेहद कम है, और, सभी बुनियादी वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों में लगातार हो रही वृद्धि के चलते खेत मजदूरों की वास्तविक मजदूरी या क्रय क्षमता में अगर लगातार गिरावट न भी आई हो, तो कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई है। अधिकतर राज्यों में सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम वेतन से कम मजदूरी दी जाती है। कृषि-मजदूरी में लिंग-आधारित विषमता कटु यथार्थ बना हुआ है और महिला मजदूरों को पुरुष मजदूरों की मजदूरी का 90% से 50% तक ही मजदूरी के बतौर मिलता है जबकि कई अंचलों में पुरुषों के अन्य राज्यों में पलायन के चलते कृषि कार्य में लगे उजरती श्रम का महिलाकरण बढ़ता जा रहा है। राष्ट्रीय असंगठित क्षेत्र उद्यम आयोग (एनसीईयूएस) ने भी दिखाया है कि कृषिकार्य में लगी 95 प्रतिशत से ज्यादा महिला-मजदूरों को न्यूनतम वेतन से कम मजदूरी मिली है।

20. इसीलिये खेत-मजदूरों की मजदूरी का संघर्ष बेहद महत्वपूर्ण है; लेकिन ये संघर्ष अभी तक अत्यंत स्थानीय और स्वतःस्फूर्त बने हुए हैं। 7 जुलाई 2010 को अखिल भारतीय खेत मजदूर सभा (खेमस) द्वारा आहूत पहली अखिल-भारतीय खेत मजदूर हड़ताल को काफी उत्साहवर्धक समर्थन मिला। रोजगार, बेहतर मजदूरी और जीवन स्थितियों में सुधार तथा सामाजिक सुरक्षा के लिए संघर्ष को और भी नियमित रूप में और व्यापक पैमाने पर चलाना होगा।

21. ग्रामीण गरीबी और बेरोजगारी के हल के रूप में यूपीए सरकार ने महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून (मनरेगा) लागू किया था। राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे संगठन (एनएसएसओ) द्वारा जुलाई 2009 से जून 2010 तक की अवधि के लिये किए गए एक अध्ययन (एनएसएसओ का 66वां राउंड) के अनुसार मनरेगा के तहत महज 24% ग्रामीण परिवारों को किसी भी तरह का रोजगार मिला (महाराष्ट्र में केवल 4%, पंजाब और हरियाणा में 5%, कर्नाटक में 8%, बिहार में 10%, केरल में 11% तथा उत्तर प्रदेश और झारखंड में 16%) और इसी अवधि के दौरान इन परिवारों को औसतन केवल 37 मानव-दिवस का ही रोजगार मिला (पश्चिम बंगाल में 17, झारखंड में 23, बिहार में 24 और उत्तर प्रदेश में 31)। वास्तविक मजदूरी तकरीबन सभी जगह अधिसूचित मजदूरी से कम पाई गई, भुगतान नियमतः देरी से ही हुआ था और बेरोजगारी भत्ता एकदम ही नगण्य था, जबकि जॉब कार्ड धारक 1000 परिवारों में से केवल 193 ने कोई रोजगार न मिलने का दावा किया (बिहार में यह संख्या 344 थी)। इसी अध्ययन में पाया गया कि हर 1000 ग्रामीण परिवारों में से महज 347 परिवारों के पास जॉब कार्ड थे (बिहार में यह आंकड़ा बेहद कम, मात्र 172 था, जबकि आधिकारिक रूप से बिहार में बीपीएल का प्रतिशत बहुत अधिक यानी 55.3 है)। हालांकि मनरेगा को दुनिया का सबसे बड़ा रोजगार गारंटी कार्यक्रम बताकर ढोल पीटा गया, लेकिन यह कार्यक्रम ग्रामीण गरीबी और बेरोजगारी में कोई खास कमी लाने में असफल ही रहा है, ग्रामीण मजदूरी के निम्नस्तर को ऊंचा उठाने में कोई सकारात्मक दबाव बनाने की तो बात ही छोड़िए।

22. नरेगा योजना लाये जाने के साथ, उसके शुरूआती दौर में ही खेमस द्वारा प्रभावी पहलकदमियां ली गईं, लेकिन योजनाबद्ध और सुनियोजित हस्तक्षेप के जरिए नरेगा से जुड़े हुए मुद्दों पर संघर्ष के आवेग को बरकरार रखना आवश्यक है। जहां शासक वर्गों के तमाम हिस्से मनरेगा को खत्म न भी कर पायें तो निष्प्रभावी बना देने की पूरी कोशिश में लगे हैं, ऐसे में हमें संकटग्रस्त किसान समुदाय की सहायता हेतु खेती तक इसको विस्तारित करने के लिए, ज्यादा से ज्यादा रोजगार की उपलब्धता, बेहतर मजदूरी तथा पंचायतों व राज्य और केन्द्र सरकारों द्वारा इस कानून के विभिन्न प्रावधानों के खुले उल्लंघन के विरुद्ध संघर्ष तेज करना चाहिए।

23. यूपीए का एक और वादा था- खाद्य सुरक्षा लाने का, जो अब उसकी वादाखिलाफी की लंबी और कड़वी दास्तान बन चुका है। अब जैसे-जैसे 2014 के आम चुनाव नजदीक आ रहे हैं, तो लगता है कि कांग्रेस एक बार

फिर खाद्य सुरक्षा को चुनावी मुद्दा बनाने को बेताब हो रही है। खाद्य सुरक्षा पर विलास मुत्तमवार के नेतृत्व में गठित संसदीय स्थायी समिति की संस्तुतियों के अनुसार प्रस्ताव है कि 75% ग्रामीण और 50% शहरी आबादी को कुल 5 किलो गेहूं और चावल प्रति व्यक्ति प्रति माह क्रमशः 2 और 3 रुपये प्रति किलो की दर पर दिया जाय। इसका मतलब हुआ 5 लोगों के परिवार के लिए 25 किलो रियायती दर पर खाद्यान्न— जो जनता द्वारा लंबे अरसे से की जा रही मांग का आधा है और फिलहाल प्राप्त हो रहे 35 किलो से भी कम है। हमें सरकार द्वारा प्रस्तावित खाद्य सुरक्षा के आधे-अधूरे खाके के खिलाफ सभी आवश्यक बुनियादी वस्तुओं को मुहैया कराने वाली सार्वभौमिक जन वितरण प्रणाली के लिए संघर्ष तीखा करना होगा।

24. खाद्य सुरक्षा से घनिष्ठ रूप से जुड़ा मुद्दा है फसलों की सरकारी खरीद और अनाज के भंडारण का सवाल. बटाईदारी अधिकारों एवं गारंटीशुदा सरकारी खरीद की कारगर प्रणाली के अभाव में छोटे उत्पादकों के बड़े हिस्से को सरकारों द्वारा घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य के लाभ से वंचित होना पड़ता है और उन्हें अपनी फसल काफी कम दाम पर बिचौलियों को बेचनी पड़ती है, और ये बिचौलिये उस फसल को राज्य को अथवा खुले बाजार में बेचकर भारी मुनाफा कमाते हैं. इसी प्रकार, पर्याप्त एवं उपयुक्त भंडारण सुविधाओं के अभाव में हम खुले में अनाज सड़ने अथवा अव्यवस्थित गोदामों में चूहों का भोग बनने और दूसरी ओर गरीबों को भुखमरी और अनाहार से मरने के लिये छोड़ दिये जाने के विरोधाभास देख पाते हैं. सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार से अतिरिक्त अनाज गरीबों के बीच मुफ्त बांट देने के लिए ठीक ही कहा था, मगर सरकार ने विवेक की आवाज पर कान देने अथवा स्थिति में सुधार करने से इन्कार कर दिया और इसीलिये समस्या जारी है. अतएव हमें सुनिश्चित सरकारी खरीद, बेहतर और पर्याप्त भंडारण तथा वितरण की निष्पक्ष प्रणाली के मुद्दे को जन गोलबंदी के एक प्रमुख एजेंडा के बतौर लेना होगा.

25. केंद्र द्वारा प्रायोजित अधिकांश योजनाएं सिर्फ बीपीएल लाभार्थियों के लिए हैं, और गरीबी रेखा को तय करने के मुद्दे पर सरकार और प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाला योजना आयोग दोनों देश के गरीबों के साथ क्रूर मजाक कर रहे हैं। हालांकि योजना आयोग द्वारा शहरी क्षेत्रों में 32 रुपए और ग्रामीण क्षेत्रों में 26 रुपए को गरीबी रेखा मानने के बेहूदा प्रस्ताव की सुप्रीम कोर्ट सहित चारों ओर सभी ने भर्त्सना की लेकिन योजना आयोग ने 2012 में इस सीमा को और घटाकर क्रमशः 28.65 रु. और 22.40 रु. कर दिया और इस तरह दावा किया कि 2004-05 में गरीबी अगर 37.2% थी तो 2009-10 में वह घटकर 29.8% रह गई है!

26. अक्सर जानबूझकर की जाने वाली प्रशासनिक गलती से गरीबों का नाम सूची से बाहर कर देने के अलावा, गरीबी रेखा का निर्धारण करते समय ही गरीबों को इस अधिकार से वंचित कर दिया जा रहा है। और अब बेहतर ढंग से सच्चे जरूरतमंद (लक्षित) लोगों को लाभ पहुंचाने के नाम पर एक तीसरे पहलू को जोड़ने का प्रस्ताव है, जो कि तथाकथित प्रत्यक्ष लाभ या नकदी पैसा देने की प्रणाली कहलाती है। इस प्रणाली को अभी सीमित तौर पर लागू किया जा रहा है, पर इसका मकसद धीरे-धीरे लगभग सभी कल्याणकारी योजनाओं को इस प्रणाली के तहत लाना है, और बाद में यहां तक कि खाद्य सुरक्षा को भी इसके तहत लाया जा सकता है। इन योजनाओं के लिए लाभार्थियों के पास अनिवार्यतः आधार कार्ड और बैंक खाता होना जरूरी है, इस कारण उनके योजनाओं से बाहर छूट जाने की संभावना और भी बढ़ जाती है। इस बहिष्करण (जरूरतमंदों का नाम गरीबी रेखा सूची से बाहर कर दिये जाने) के खिलाफ और गरीबों को सार्वभौमिक तौर पर कल्याणकारी व्यवस्था व सामाजिक सुरक्षा देने के गारंटीशुदा अधिकार के लिये संघर्ष ग्रामीण गरीबों के आंदोलन का एक महत्वपूर्ण एजेंडा है।

27. ग्रामीण संघर्षों को गांवों में सड़क, बिजली, सफाई, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे मुद्दों पर भी पर्याप्त ध्यान देना होगा। सरकार द्वारा बनाया जा रहा आधारभूत ढांचा न केवल शोचनीय रूप से अपर्याप्त है, बल्कि भ्रष्टाचार में पूरी तरह डूबा हुआ और सामंत-कुलक-नौकरशाह गंठजोड़ द्वारा नियंत्रित है। उत्तर प्रदेश में बसपा शासन के दौरान राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन भारी भ्रष्टाचार का पर्याय बन गया था, जिसके चलते बड़े स्वास्थ्य अधिकारियों की रहस्यमय हत्याएं हुईं, और बिहार, झारखंड तथा अन्य अनेक राज्यों में भी इसमें घोटाले सामने आ रहे हैं। अल्पसंख्यक समुदायों और उत्पीड़ित तथा पिछड़ी जातियों के कल्याण के नाम पर घोषित विभिन्न केंद्रीय एवं राज्य योजनाएं भी सतही प्रतीकात्मकता और भ्रष्टाचार में डूबी हुई हैं। इस प्रक्रिया में ऐसी योजनाओं के हकदार जिन लाभार्थियों को धोखा देकर वंचित किया जा रहा है, उन्हें इस धोखाधड़ी के खिलाफ तथा उचित लाभ हासिल करने के लिए संघर्ष में संगठित करना होगा। बुनियादी सुविधाएं मुहैया कराने के विपरीत, तकरीबन सभी राज्य सरकारें शराब के धंधे को प्रोत्साहित करने पर तुली हैं, इसके लिए जारी कानूनी लाइसेंस का इस्तेमाल अक्सर गैर-कानूनी शराब बनाने के लिये किया जाता है। नतीजतन, शराब से मरने की घटनाओं में बढ़ोत्तरी हो रही है, जबकि सरकारें ज्यादा राजस्व वसूली का ढोल पीट रही हैं और शासक वर्ग की पार्टियां शराब माफिया के साथ सांठगांठ कायम

किये हुए हैं। इसलिए एक सशक्त शराब-विरोधी आंदोलन का निर्माण हमारे एजेंडा का अभिन्न अंग होना चाहिये।

28. केंद्र और राज्य सरकारों के ग्रामीण प्रशासनिक नेटवर्क के अलावा पंचायतें ग्रामीण विकास की अर्थनीति और राजनीति तथा विभिन्न लोक सेवाओं और कल्याण योजनाओं में अधिकाधिक निर्णायक भूमिका निभा रही हैं। सहकारी समितियों और स्वयं-सहायता समूहों का नेटवर्क भी ग्रामीण जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। लेकिन सामंती-कुलक नियंत्रण, भ्रष्ट नौकरशाहाना जकड़बंदी और ब्याज की मनमानी दरों के चलते ये सहकारी संस्थाएँ और माइक्रो-फाइनेन्स एजेन्सियाँ ग्रामीण गरीबों को कोई राहत पहुंचाने की बजाय अक्सर उन पर कहर बरपा कर रही हैं। इन संस्थाओं में भ्रष्टाचार तथा इन पर सामंती-कुलक-नौकरशाही नियंत्रण के विरुद्ध संघर्ष और इनकी पारदर्शिता और जवाबदेही के लिए संघर्ष ग्रामीण क्षेत्रों में लोकतंत्र के लिए लड़ाई का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। ग्रामीण क्षेत्रों की नेतृत्वकारी कमेटियों और जन संगठनों के पूरे नेटवर्क को, खासकर खेमस और किसान महासभा को इस दिशा में समेकित रूप से काम करना चाहिए।

29. ग्रामीण भारत आज भी जाति एवं लिंग-आधारित उत्पीड़न और हिंसा के पाशविक रूपों का गवाह है। सांप्रदायिक शक्तियाँ भी ग्रामीण इलाकों में सांप्रदायिक पूर्वाग्रह और सांप्रदायिक घृणा का प्रचार करने में सक्रिय हैं। इसलिये समाज के उत्पीड़ित तबकों, खासकर दलितों और महिलाओं, के सम्मान और मानवाधिकारों के सवाल को ग्रामीण इलाकों के कम्युनिस्ट कार्यभार का एक प्रमुख तत्व समझना चाहिए। लगातार चलाये गये संकल्पबद्ध प्रतिरोध के चलते संभव है कि उत्पीड़न और हिंसा के कुछ अत्यंत पुराने रूप अतीत की बात लगते हों, लेकिन इस मोर्चे पर भी निश्चित होने की कोई जगह नहीं है क्योंकि सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में ये क्रूरताएँ अब भी रह-रह कर सामने आती हैं। लोकतंत्र, सम्मान और सामाजिक प्रगति की लड़ाई को ग्रामीण इलाकों में सामंती-कुलक पितृसत्तात्मक प्रभुत्व को अनवरत चुनौती देकर ही आगे बढ़ाया जा सकता है।

30. जुझारू कृषि संघर्ष हमारी जनशक्ति और क्रांतिकारी पहचान का मुख्य स्रोत रहे हैं। लगभग सभी जगहों पर ऐसे संघर्षों को सामंती-कुलक हिंसा और राज्य दमन का अनिवार्यतः सामना करना पड़ा है। बिहार में सामंती-कुलक ताकतों ने जाति के नेटवर्क और राजनीतिक संरक्षण का इस्तेमाल करते हुए निजी सेनाओं का गठन किया। अक्सर ये सेनाएँ कानून लागू करने वाली मशीनरी से बहुत हद तक बेखौफ रहती हैं। रणवीर सेना के गठन तथा



उसके द्वारा सिलसिलेवार ढंग से किये जाने वाले बर्बर जनसंहारों से लेकर अमीरदास आयोग को भंग करने, जनसंहार के दोषियों को बरी करने और रणवीर सेना के मुखिया के सफाये के बाद उसके समर्थकों के उन्माद के आगे पूरी राज्य मशीनरी के आत्मसमर्पण की पूरी परिघटना से इसी बात की पुष्टि होती है। राज्य और रणवीर सेना के बीच इस गठजोड़ के बावजूद, पार्टी और क्रांतिकारी किसान आंदोलन को रणवीर सेना को कमजोर करने व अलगाव में डालने तथा कृषि संघर्षों में नई जान फूंकने और व्यापक आधार वाली ग्रामीण जन-गोलबंदी के जरिये उनकी चुनौती को शिकस्त देने में सफलता मिली। निजी सेनाओं, खासकर रणवीर सेना का मुकाबला करने और सामंती शिकंजे को तोड़कर व्यापक किसान एकता बनाये रखने तथा जुझारू किसान संघर्षों को टिकाये रखने के अनुभव कृषि कार्यक्रम और क्रांतिकारी कम्युनिस्ट व्यवहार की अंतर्निहित शक्ति का अनमोल सबूत हैं।

31. सामरिक चुनौती के अलावा, ग्रामीण व कृषि संघर्ष चौतरफा गंभीर राजनीतिक चुनौती से दरपेश हैं। राज्य की कृषि एवं ग्रामीण विकास की रणनीति ने ग्रामीण प्रशासन और पंचायती राज संस्थाओं के नेटवर्क पर मजबूत पकड़ रखने वाले सामंती-कुलक गठजोड़ को जन्म दिया है। वर्षों के सामंत-विरोधी संघर्ष के दौरान बनी जुझारू किसान व ग्रामीण गरीबों की एकता आज सामंत-कुलक-नौकरशाह गठजोड़ की साजिशों का सामना कर रही है, और शासक वर्गीय खैरात की राजनीति द्वारा पैदा की गई प्रतिस्पर्द्धा और विभाजन का शिकार बन रही है।

32. कृषि एवं ग्रामीण अर्थतंत्र पर बढ़ता कॉरपोरेट-साम्राज्यवादी हमला भी ग्रामीण परिदृश्य में उल्लेखनीय बदलाव लाया है, जिसके तहत एनजीओ का फैलता नेटवर्क तथा बिचौलियों व अन्य दलालों का जत्था भूमि व अन्य विविध संसाधनों से मालामाल हो रहा है। ऐसी चुनौतियों के समक्ष क्रांतिकारी किसान आंदोलन को खुद को नये सांचे में ढालना होगा और नये तौर-तरीके अपनाने होंगे। लंबे समय तक ठहराव की स्थिति बने रहना आंदोलन को अर्थवाद और निहित स्वार्थों को पनपने के खतरों के सामने असुरक्षित बना सकता है। यह जरूरी है कि आंदोलन के वेग को बनाये रखा जाये, और उसे किसी एक मुद्दे तक सीमित न किया जाय, चाहे वह जमीन का बुनियादी मुद्दा ही क्यों न हो। किसी संघर्ष की उपलब्धियों को सामंती-कुलक प्रभुत्व एवं कॉरपोरेट-साम्राज्यवादी हमलों के विरुद्ध जनता के जवाबी प्रभुत्व के निर्माण के जीवंत और गतिशील राजनीतिक दृष्टिकोण को बुलंद करने के जरिये ही सुरक्षित, सुदृढ़ और विस्तारित किया जा सकता है।



# महिला आंदोलन के समक्ष चुनौतियां और कार्यभार

1. वर्तमान भारत में समानता के लिए महिलाओं की बढ़ती दावेदारी और तीव्र होती आकांक्षाओं को, जो जड़-जमाये बैठी पितृसत्ता को चुनौती दे रही है, हर क्षेत्र में देखा और महसूस किया जा सकता है। इस दावेदारी और बढ़ती जन भागीदारी के ठीक विपरीत हम महिलाओं के खिलाफ बेरोकटोक तेज होती यौन एवं पितृसत्तात्मक हिंसा तथा महिलाओं द्वारा कठिन संघर्ष के जरिये हासिल अधिकारों और आजादी पर खुले एवं संगठित पितृसत्तात्मक हमले (शारीरिक और वैचारिक दोनों) भी देख रहे हैं। इसके साथ ही भारत में महिलाओं के कुपोषण, भूख और प्रसव के दौरान मातृ-मृत्यु की दर पूरे विश्व में बदतरनीन उदाहरण पेश करती है। यह अंतरविरोध या विरोधाभास आधुनिक भारत की चारित्रिक विशिष्टता को परिभाषित करता है।

2. यह सच्चाई है कि पूंजी और पंचायत जैसी राज्य की संस्थाओं और वैश्विक पूंजी एवं भारतीय राज्य से घनिष्ठ रूप से जुड़े एनजीओ के नेटवर्क ने ग्रामीण इलाकों में अपनी घुसपैठ बढ़ा दी है, जिसके फलस्वरूप महिलाओं की अच्छी-खासी संख्या घरों से बाहर निकलकर श्रमशक्ति के रूप में और राजनीतिक क्षेत्र में आ गई है। लेकिन इस दावेदारी को रोकने के लिये वर्ग, जाति एवं लैंगिक-वर्चस्व की शक्तियां, चरम बर्बर उपायों समेत समस्त साधनों का इस्तेमाल करते हुए, संघबद्ध हो रही हैं, जबकि राज्य और पूंजी, महिलाओं को श्रमशक्ति में शामिल करने के क्रम में, वास्तव में मौजूदा पितृसत्तात्मक ढांचों और विचारधाराओं का, जो महिलाओं की यौनिक एवं घरेलू गुलामी तथा सामाजिक अधीनता के लिये जिम्मेवार हैं, इस्तेमाल

कर रहे हैं, उन्हें शक्तिशाली बना रहे हैं और निरंतरता प्रदान कर रहे हैं। इस प्रकार भारतीय महिलाएं दोनों व्यवस्थाओं— सामंती उत्पीड़न के साथ-साथ पूंजीवादी शोषण एवं अमानवीकरण की प्रणाली— की बदतर शिकार हैं, खास तौर पर इसलिये कि वृद्धि का नव-उदारवादी मॉडल सामाजिक-आर्थिक ढांचों, रीति-रिवाजों और मूल्य-प्रणालियों में सामंतवाद के कई अवशेषों को संरक्षित करता है, उससे लाभ उठाता है और कुछेक मामलों में संशोधित रूपों में उनका पुनरुत्पादन करता है।

3. सामंती-पितृसत्तात्मक विरोध के बावजूद, महिलाएं और अधिक सक्रियता के साथ सामाजिक एवं राजनीतिक भूमिका का निर्वाह करने के लिये नये अवसरों— मसलन, स्कूली शिक्षा, रोजगार के विभिन्न अवसर तथा पंचायती राज संस्थाओं में 50 प्रतिशत आरक्षण के प्रावधान— का उपयोग करने की कोशिश कर रही हैं। नए अवसरों एवं अनुभवों ने महिलाओं में आत्मविश्वास और राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाया है। महिलाओं की बढ़ती गतिशीलता और सार्वजनिक भूमिका (रोजगार और साथ-ही-साथ राजनीतिक जीवन में) घरेलू एवं सामाजिक जीवन में परंपरागत पितृसत्तात्मक व्यवस्थाओं एवं प्रवृत्तियों को डगमगा रही है, जिसके परिणामस्वरूप, न केवल लैंगिक भूमिका एवं विचारधारा में प्रगतिशील बढ़ोतरी हुई है, बल्कि नए सिरे से पितृसत्तात्मक चिंताओं, तनावों एवं हिंसा में भी बदलाव आया है।

4. इन परिवर्तनों के मुकाबले परंपरागत जातीय पितृसत्ता की शक्तियां नए सिरे से हमलों के जरिये अपनी ताकत दिखला रही हैं ताकि महिलाओं की लैंगिकता, गतिशीलता एवं प्रजनन शक्ति पर नियंत्रण बरकरार रखा जा सके तथा जमीन और संपत्ति की पितृसत्तात्मक व सामंती व्यवस्थाओं को, जिन्हें महिलाओं को हासिल नये अधिकारों एवं उनकी दावेदारी से खतरा पहुंच रहा है, बचाया जा सके। ये शक्तियां न केवल सामंती अतीत की झलक हैं, बल्कि वे आधुनिक युग के अनुसार अपने को नए सिरे से ढाल रही हैं। अक्सरहा इन्हें शासक वर्ग की तमाम राजनीतिक पार्टियों द्वारा संरक्षण मिलता रहता है। यहां ध्यान देने योग्य बात है कि पितृसत्तात्मक प्रतिक्रिया की शक्तियां ऐसे क्षेत्रों में सर्वाधिक संगठित और आक्रामक दिखती हैं, जहां हरित क्रांति और कृषि में पूंजीवादी विकास का सबसे ज्यादा असर दिखाई पड़ा है (मसलन पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश)।

5. इसे नोट किया जाना चाहिये कि पितृसत्तात्मक प्रवृत्तियां जिनके साथ अक्सर जातीय एवं साम्प्रदायिक पुनरुत्थानवाद जुड़ा रहता है, शहरी परिप्रेक्ष्य में भी सशक्त तौर पर उपस्थित हैं, जिनके दायरे में पेशेवर मध्यवर्ग भी आता

है। महिलाओं की दावेदारी के खिलाफ पितृसत्तात्मक प्रतिक्रिया को “परिवार बचाओ” किस्म के विचार या मुहिम की शक्ल में भी साफ तौर पर देखा जा सकता है, जो महिलाओं पर हिंसा के खिलाफ बनाये गये कानूनों को अपना निशाना बनाती हैं। शहरी केन्द्रों में पेशेवर मध्यवर्ग की इस किस्म की व्यापक और जहरीली पितृसत्तात्मक दावेदारी आधुनिकता की सतही चमक के तले नहीं छिप सकती। वैश्वीकृत भारत का कारपोरेट मीडिया और मनोरंजन उद्योग महिलाओं को और अधिक उपभोग की वस्तु के रूप में दिखा कर आधुनिकता को विकृत तरीके से परिभाषित करने की कोशिश में है। उदारकरण में बाजार महिलाओं की आकांक्षाओं को उनकी स्वायत्तता और पितृसत्ता के विरुद्ध दावेदारी को नजरअंदाज करते हुए उन्हें उपभोक्ता अथवा उपभोग की वस्तु के अर्थों में गढ़ना चाहता है।

6. पितृसत्ता के खिलाफ महिलाओं की दावेदारी और प्रतिरोध, जो परिवार, कुटुम्ब, समुदाय, रोजगार, सार्वजनिक संस्थाओं और राज्य में अभिव्यक्त होते हैं, आज भारत में जनवाद और क्रांतिकारी सामाजिक बदलाव की लड़ाई का एक प्रमुख रणक्षेत्र बन गया है और इसे समग्र कम्युनिस्ट आंदोलन के लिए एक मुख्य क्रांतिकारी कार्यभार के रूप में आत्मसात करना होगा।

## महिलाओं के खिलाफ हिंसा

7. राष्ट्रीय राजधानी में 16 दिसम्बर 2012 की रात को चलती बस में एक युवा छात्रा के साथ बर्बरतापूर्ण सामूहिक बलात्कार की घटना के बाद दिल्ली एवं समूचे देश में आये जन उभार ने इस बात को रेखांकित किया है कि किस तरह यौन हिंसा और महिलाओं की स्वायत्तता का सवाल सचमुच लोकतंत्र और सामाजिक परिवर्तन का ही महत्वपूर्ण सवाल है। इस आंदोलन की जन लोकप्रियता के आयाम के अलावा उल्लेखनीय बात यह थी कि इसमें महिलाओं की आजादी का नारा केन्द्रीय विषय बन गया, और सार्व. जनिक हस्तियों— पुलिसवाले, राजनीतिज्ञ, ‘संत-महात्मा’, प्रशासनिक अधिकारियों और न्यायाधीशों— द्वारा पोशाक, आचार-व्यवहार, और नैतिक मूल्यों जैसी पितृसत्तात्मक संहिता का हवाला देते हुए पीड़िता को ही दोषी बताकर इस किस्म की हिंसा को जायज ठहराने की सर्वत्र व्याप्त प्रवृत्ति के खिलाफ जनता का प्रतिवाद फूट पड़ा। हमारे छात्र, युवा महिला व सांस्कृतिक संगठनों ने इस आंदोलन को जारी रखने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई और महिलाओं की स्वायत्तता के मुद्दों एवं पितृसत्ता-विरोधी प्रतिरोध को उसके केन्द्र में बनाये रखा, और उन्होंने दलित महिलाओं के साथ बलात्कार, साम्प्रदायिक हिंसा

अथवा दलितों के जनसंहार के दौरान होने वाले बलात्कार, उत्तर-पूर्व और कश्मीर में सेना द्वारा किये गये बलात्कार और सशस्त्र बल विशेष अधिकार कानून (एफएसपीए) के खिलाफ, जो सेना को सजा की परवाह से आजाद करता है, सोनी सोरी जैसी हिरासत में बलात्कार की घटनाओं, भूमि अधिग्रहण के खिलाफ चले संघर्षों में तापसी मलिक जैसी महिलाओं के साथ बलात्कार और लैंगिक अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न तथा उनके खिलाफ यौन हिंसा जैसे मुद्दे जोरदार ढंग से उठाये.

8. इस आंदोलन के जवाब में सरकार द्वारा गठित जस्टिस वर्मा कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लीक से हटकर ढेर सारी सिफारिशें पेश कीं जिनमें उन्होंने आंदोलन की भावना को प्रतिबिम्बित करते हुए महिलाओं की स्वायत्तता की रक्षा करने और उन्हें हिंसा से आजादी दिलाने के मकसद से कानूनों और नीतियों में परिवर्तन करने तथा सरकार को जवाबदेह बनाने की मांग की. यह आंदोलन अनिच्छुक सरकार और संसद से बलात्कार और यौन हिंसा से सम्बंधित कानूनों में कुछ उल्लेखनीय और लम्बे अरसे से बाकी पड़े संशोधनों को हासिल कर सका है. कुछ महिला-विरोधी प्रावधानों को, जिन्हें सरकार ने घुसाने की कोशिश की थी— जैसे बलात्कार कानून में आरोपी को लिंग-निरपेक्ष बना देना, और यौन हिंसा कानूनों में 'झूठी शिकायत' के खिलाफ प्रावधान घुसाना— सफलतापूर्वक परास्त किया गया. इस कानून में करवाये गये महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित हैं : यौन हिंसा की शिकायतों में पुलिस अधिकारियों द्वारा कर्तव्य की उपेक्षा किये जाने पर अनिवार्य न्यूनतम सजा का प्रावधान; यह स्पष्टीकरण दिया जाना कि बलात्कार और यौन आक्रमण के आरोपी लोक सेवकों को अपने खिलाफ मुकदमा चलाये जाने के लिये सरकार से "पूर्व अनुमति" लेने की सुरक्षा ढाल नहीं मिलेगी ; बलात्कार की परिभाषा का विस्तार और पीछा करना, निर्वस्त्र करना, ताक-झांक करना और एसिड से हमला आदि को अपराध की श्रेणी में रखना, साम्प्रदायिक और जातीय हिंसा के दौरान तथा हिरासत में बलात्कार के लिये अपेक्षाकृत कठोर सजा और एसिड से हमलों की पीड़िताओं और यौन हिंसा की शिकार महिलाओं का अनिवार्य रूप से तुरंत मुफ्त इलाज का प्रावधान. मगर यौन सम्पर्क के लिये सहमति की उम्र को 16 से बढ़ाकर 18 वर्ष कर दिया गया, तथा 16 से 18 वर्ष की उम्र के बीच के युवाओं के बीच सहमति से होने वाले यौन सम्बंध को अपराध करार दिया गया. सशस्त्र सेनाओं के लिये 'पूर्व अनुमति' की सुरक्षा ढाल को बरकरार रखा गया है ; एफएसपीए में संशोधन, तथा वैवाहिक बलात्कार को मानने और बलात्कार के शिकार की परिभाषा को लिंग-निरपेक्ष मानने जैसी जस्टिस वर्मा कमेटी

की सिफारिशों को खारिज कर दिया गया है।

9. संसद में बलात्कार-विरोधी कानून पर बहस के समय बेलगाम लैंगिक भेदभाव और नारी-विद्वेष का प्रदर्शन, जिसका नतीजा कई प्रावधानों को शिथिल किये जाने में हुआ, इस बात का साफ संकेत है कि कैसे भारत में यौन हिंसा कानून में होने वाली हर प्रगति शासक राजनीतिक शक्तियों की इच्छाशक्ति का परिणाम नहीं बल्कि उनकी अनिच्छा के बावजूद हासिल की गई है। यह ध्यान देने लायक तथ्य है कि बलात्कार व महिलाओं के प्रति हिंसा के विभिन्न मामलों में आरोपी सांसदों व विधायकों की संख्या अच्छी खासी है। इस संदर्भ में वर्मा कमीशन द्वारा बलात्कार के आरोपियों को चुनाव लड़ने से रोकने के लिए की गई अनुशंसा समीचीन थी, लेकिन जैसा कि अदेशा था संसद ने इसे खारिज कर दिया। इस आंदोलन ने बलात्कार पीड़ितों के डाक्टरी परीक्षण एवं उनकी देखभाल के लिए नये मानक बनाने के सवाल को भी उठाया था। खासतौर पर, महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रही वैधानिक चिकित्सकीय परीक्षणों जो बलात्कार पीड़िता के पिछले इतिहास पर जोर देने को वैधता प्रदान करते हैं, को खत्म करवाने के लिए संघर्ष जारी है।

10. हाल ही में कार्यस्थल पर यौन-उत्पीड़न के खिलाफ लागू किये गये कानून ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 1997 में दी गई ऐतिहासिक व कानूनन बाध्यकारी विशाखा गाइडलाइन को कमजोर कर दिया है। नये कानून में 'झूठी' शिकायत के लिये सजा का प्रावधान नितांत महिला-विरोधी प्रावधान है, जो महिलाओं को शिकायत दर्ज कराने से निरुत्साहित करेगा। यह कानून नियोजकों द्वारा किये जाने वाले यौन उत्पीड़न के खिलाफ शिकायत कमेटियों को कारगर स्वायत्तता की गारंटी नहीं करता, और वर्तमान में सफलतापूर्वक कार्य कर रही संस्थाओं को उनकी स्वायत्तता जारी रखने की गारंटी नहीं देता।

11. कानून द्वारा वैवाहिक बलात्कार को स्वीकार करने से इन्कार पत्नी को पुरुष की सम्पत्ति मानने के विचार पर आधारित है। व्यभिचार कानून भी इसी प्रस्थापना पर आधारित है। यूपीए सरकार ने चंद वर्ष पहले जो व्यभिचार कानून में संशोधन करने का कदम उठाया था उसके पीछे उसमें लैंगिक पूर्वाग्रह को दुरुस्त करने की कोई मंशा नहीं थी। व्यभिचार कानून 'पीड़ित' पति को अपनी पत्नी के प्रेमी के खिलाफ आपराधिक शिकायत दर्ज कराने की अनुमति देता है (अगर पति का दूसरी स्त्री के साथ सम्बंध हो तो पत्नी के पास कोई कानूनी उपचार नहीं है)। सरकार ने 2008 में इस कानून में ऐसा संशोधन करने के पक्ष में तमाम राज्यों से सलाह मांगी थी कि विवाहेतर सम्बंध बनाने वाली पत्नी को कानून अपराधी ठहराने की इजाजत दे दे! सरकार ने

राष्ट्रीय महिला आयोग के इस सुझाव को अनदेखा किया है कि व्यभिचार के खिलाफ आपराधिक कानून को खत्म कर दिया जाय और विवाहेतर सम्बंध को आपराधिक कृत्य मानने के बजाय पति-पत्नी द्वारा एक-दूसरे के खिलाफ दीवानी मुकदमा माना जाय.

12. भारत में बच्चों के यौन उत्पीड़न और बलात्कार की घटनायें, अक्सर परिवार के सदस्यों द्वारा ही, काफी होती हैं. ये अपराध पितृसत्तात्मक संस्कृति से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं, जहां बच्चों को कोई स्वायत्तता नहीं होती, उन्हें बिना कोई सवाल पूछे चुपचाप वयस्कों का आज्ञाकारी होने का पाठ पढ़ाया जाता है, तथा यौन शिक्षा को बुरी नजर से देखा जाता है. फिर बाल विवाह की प्रथा (जिस पर करीब एक सदी पहले ही रोक लग गई थी, लेकिन आज भी भारत के कई हिस्सों में बेरोकटोक जारी है) को भी इन अपराधों से अलग करके नहीं देखा जा सकता. बाल गृहों व छात्रावासों के अन्दर बच्चों का बलात्कार (हाल ही में हरियाणा और छत्तीसगढ़ में ऐसी घटनायें हुई हैं) जघन्य श्रेणी का अपराध है. ये अपराध इस बात को रेखांकित करते हैं कि सत्ता और प्रभुत्व, चाहे परिवार के अंदर हो अथवा ऐसी संस्थाओं में, बच्चों के विरुद्ध यौन हिंसा के मूल में होते हैं. इस दिशा में 2012 में लाया गया प्रिवेन्शन ऑफ चाइल्ड सेक्सुअल ऑफेन्सेज एक्ट एक स्वागत योग्य कदम है, लेकिन बच्चों के प्रति यौन हिंसा और बलात्कार को बढ़ावा देने वाली संस्कृति को चुनौती देने के लिए अभी बहुत कुछ करने की जरूरत है.

13. सरकार के लिए अभी भी यौन हिंसा और घरेलू हिंसा के खिलाफ कानूनों को पुख्ता करने के लिये एसिड हमलों की पीड़िताओं व बलात्कार पीड़िताओं के लिये सुरक्षित आश्रय गृहों, मुफ्त स्वास्थ्य सेवा और पुनर्वास की व्यवस्था के लिये बजट में कारगर आवंटन करना बाकी है. इसके अलावा, सरकारों ने कई मौकों पर महिला-विरोधी शक्तियों के दबाव में घुटने टेक दिये हैं. उदाहरणस्वरूप, आजकल केन्द्र सरकार ने दहेज-विरोधी कानून के खिलाफ सुनियोजित ढंग से चलाई जा रही मुहिम के सामने आत्मसमर्पण करके धारा 498-ए (गंभीर घरेलू हिंसा और दहेज संबंधी यातना) में संशोधन का प्रस्ताव किया है.

14. महिलाओं, खासकर नवयुवतियों की, शिक्षा, रोजगार, संपत्ति में भागीदारी और जीवन-साथी चुनने की स्वाधीनता समेत व्यक्तिगत जीवन में अधिक स्वायत्तता की दावेदारी जाति व्यवस्था और संपत्ति के हस्तांतरण के पितृसत्तात्मक नियमों के सामने खतरा बन गई है, और यह दावेदारी खुले पितृसत्तात्मक हमलों का सामना कर रही है. कई बार यह आक्रामकता पितृसत्ता



एवं पारिवारिक प्राधिकार के 'भद्र' प्रदर्शन का रूप धारण कर लेती है, जो महिलाओं से वंशगत 'वफादारी' दिखलाने तथा भारतीय माताओं एवं पत्नियों के 'पवित्र कर्तव्यों और नैतिक गुणों' के प्रदर्शन की अपील करता है। अन्य मामलों में यह परिवार के भीतर 'ऑनर' क्राइम (झूठी इज्जत के नाम पर किये जा रहे अपराधों) का रूप ले लेता है। निरंतर बढ़ते 'ऑनर' क्राइम और नैतिक निगरानी ने संगठित सामाजिक-राजनीतिक स्वरूप अख्तियार कर लिया है, जिसमें संघ परिवार की संस्थाएं, खाप पंचायतें और सभी धर्मों के प्रतिक्रियावादी संगठन जातीय, धार्मिक और पितृसत्तात्मक फरमानों को मनवाने के लिए संगठित हमले कर रहे हैं। ऐसी संगठित शक्तियों के खिलाफ, जो नैतिक निगरानी और 'ऑनर' क्राइम में लिप्त हैं, कार्रवाई करने में सरकार की रुचि बहुत ही कम है, बल्कि यह कहना ज्यादा उचित होगा कि इस मामले में राजनीतिक शक्तियों और राज्य मशीनरी के बीच ऊंचे दर्जे की सांठगांठ है। 'ऑनर' क्राइम के बहुतेरे मामलों में वर्चस्वशाली जातियों के लोग ही विवाह में जातीय सीमाओं को तोड़ने के कारण अपनी जाति की महिलाओं के साथ, और साथ ही शोषित जाति की महिलाओं के ऊपर, हिंसक कार्रवाई करते हैं। लेकिन 'ऑनर' क्राइम केवल वर्चस्वशाली जातियों द्वारा ही नहीं किये जाते। उत्पीड़ित जातियों और आदिवासी समुदायों ने भी, जिन्हें वर्चस्वशाली जातियों द्वारा 'सम्मान' पाने योग्य ही नहीं समझा जाता, अपने समुदायों के भीतर महिलाओं की लैंगिकता और आजादी पर नियंत्रण कायम करने के जरिये ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक 'ऑनर' पर अपना दावा करना शुरू कर दिया है।

15. महिलाओं के खिलाफ घरेलू हिंसा हर जाति एवं वर्ग में बेलगाम जारी है। यह लोकतंत्र की बुनियादी कमी और उस असमानता का निर्मम सूचक है, जो पितृसत्तात्मक समाज में महिला-पुरुष के बीच के संबंध में और विवाह की संस्था व परिवार में गहरे तक जड़ें जमाये हुए है। असुरक्षित रोजगार एवं बेरोजगारी में महिलाओं को अत्याचारपूर्ण शादी में बंधकर और अधिक असुरक्षा का शिकार बनना पड़ता है। घर और परिवार नाम मात्र के लिये 'निजी' दायरे रह गये हैं। वास्तविकता में, ये संस्थाएं पितृसत्तात्मक, जातीय और वर्गीय उत्पीड़न के ढांचे के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, और घर के अंदर महिलाओं की अधीनता तथा उनकी यौनिकता और जनन पर नियंत्रण सम्पत्ति के सम्बंधों एवं जातीय सोपानक्रम को बरकरार रखने, दहेज हासिल करने और घरेलू श्रम के माध्यम से पूंजीवाद को रियायत (सब्सिडी) देने के लिये अत्यावश्यक है। दहेज के विरुद्ध कानून होने के बावजूद दहेज उत्पीड़न, यहां तक कि हत्यायें भी, बेरोकटोक जारी हैं। घरेलू हिंसा और दहेज प्रथा

को परिवार के भीतर हल होने वाले 'निजी' मामलात कदापि नहीं समझा जा सकता, ये महिलाओं को अधीन बनाने के साधन हैं और हमें इसके खिलाफ शक्तिशाली जन-अभियानों और आन्दोलनों को संगठित करना होगा।

16. लिंग निर्धारण के बाद गर्भपात और मादा-शिशु हत्या की परिघटना ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में, खास तौर पर संपन्न लोगों में, जिन्हें जन्म-पूर्व लिंग निर्धारण तकनीक ज्यादा आसानी से उपलब्ध होती है, लगातार पनप रही है। नवीनतम जनगणना के आंकड़े दर्शाते हैं कि 0-6 वर्ष आयु-समूह की लड़कियों की संख्या आजादी के बाद से अपने न्यूनतम स्तर पर पहुंच गई है— प्रति 1000 लड़कों पर मात्र 914 लड़कियां। राज्य व केंद्र की सरकारें जानबूझकर पीसी एंड पीएनडीटी ऐक्ट (गर्भधारण-पूर्व एवं प्रसव-पूर्व नैदानिक तकनीक ऐक्ट, 1994) को लागू करने में शिथिलता बरतती रही हैं, और इस प्रकार वे प्रसव-पूर्व लिंग-निर्धारण एवं मादा भ्रूण हत्या/गर्भपात से संबंधित अनैतिक चिकित्सा उद्योग को बेलगाम चलने-फूलने दे रही हैं। हरियाणा जैसे राज्यों में विषम लिंगानुपात ने ऐसे हालात पैदा कर दिये हैं कि केरल, कर्नाटक आदि राज्यों से वहां 'पत्नियां' खरीद कर लायी जा रही हैं। ऐसे विवाहों में महिलाओं की स्थिति अत्यधिक असुरक्षित होती है। पीसी एंड पीएनडीटी ऐक्ट को लागू करने के साथ-साथ, यह भी स्पष्ट है कि पुत्रोत्पत्ति को वरीयता और मादा भ्रूण के गर्भपात के खिलाफ प्रतिरोध केवल तभी किया जा सकता है जब उसके साथ-साथ पितृसत्ता का मुकाबला करने तथा समाज में महिलाओं की प्रतिष्ठा और सम्मान को बढ़ाने वाले ढेर सारे अन्य कदमों को भी लागू किया जाय।

17. पूरे देश में दलित और पिछड़ी जातियों की सामाजिक एवं राजनीतिक दावेदारी को हिंसक सामंती प्रतिक्रिया का सामना करना पड़ रहा है। सामंती ताकतों द्वारा किये गये सार्वजनिक अपमान और यौन-हिंसा का मुख्य शिकार खास तौर पर इन उत्पीड़ित समुदायों की महिलाओं को बनना पड़ता है। विशेषकर दलित महिलाओं को सामंती ताकतों व सामाजिक अनुक्रम में ऊपर उठ रही मध्य जातियों द्वारा भीषण यौन हिंसा व अपमान झेलना पड़ता है। ऐसे अधिकांश मामलों में एस.सी./एस.टी. कानून लगाया ही नहीं जाता। भूमि हड़प के खिलाफ संघर्षों में आगे रहने वाली आदिवासी महिलायें छापेमारी के दौरान एवं हिरासत में अक्सर पुलिस व सुरक्षा बलों द्वारा बलात्कार का शिकार बनायी जाती हैं।

महिलाओं को डायन या टोहनी करार देने और उनकी हत्या कर देने अथवा सार्वजनिक रूप से उनको अपमानित करने की घटनाएं अकेली महिला या विधवाओं के मामले में अक्सर होती हैं जिनका कारण अक्सर उनकी सम्पत्ति को हड़पना होता है. धार्मिक संस्थाओं के अंदर तथाकथित बाबाओं द्वारा महिलाओं का यौन-शोषण एवं उनसे दुर्व्यवहार भी एक सामान्य परिघटना बन गई है.

18. राज्य दमन के खिलाफ उत्तर-पूर्व और कश्मीर की महिलाओं ने बहादुराना संघर्ष किये हैं. मणिपुर में इरोम शर्मिला की भूख हड़ताल और थांगजाम मनोरमा के बलात्कार व हत्या के विरोध में मणिपुरी महिलाओं द्वारा नग्न हो कर किया गया विरोध ए.एफ.एस.पी.ए. के खिलाफ मजबूत प्रतिरोधों के रूप में जाने जाते हैं.

साम्प्रदायिक नरसंहारों के दौरान फासीवादी ताकतों द्वारा मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय की महिलाओं को यौन हिंसा का शिकार बनाया जाता है. बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता के दबाव में पृथक बस्तियों में रहने को मजबूर (घेट्टोकरण) अल्पसंख्यक समुदाय के अन्दर की रूढ़िवादी ताकतों का भेदभाव व हिंसा, शिक्षा व रोजगार के मूल अधिकारों से वंचित मुस्लिम महिलाओं को और असुरक्षित बना देता है.

दलित, आदिवासी और मुस्लिम महिलाओं का अपने अधिकारों और सम्मान के लिए संघर्ष, और उत्तर-पूर्व व कश्मीर की महिलाओं का राज्य दमन के खिलाफ संघर्ष भारत में महिला आन्दोलन के लिए महत्वपूर्ण सवाल हैं.

19. महिला संगठनों, छात्र-युवा संगठनों और सांस्कृतिक संगठनों को अगली कतार में रखकर हिंसा के खिलाफ एक सशक्त, बहु-स्तरीय प्रतिरोध का निर्माण करना होगा, जिसमें निम्नलिखित कार्यभार शामिल हैं— महिला-पक्षधर कानूनों को लागू करने के लिये अभियान छेड़ना ; महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने एवं उनकी सुरक्षा को सुनिश्चित करने में नाकाम सरकारों एवं राजनीतिक शक्तियों के खिलाफ प्रतिवाद करना ; और महिलाओं के मुहल्ला-स्तरीय सतर्कता-समूहों का निर्माण, उत्पीड़न की शिकार महिला को दोषी ठहराने, पुत्रोत्पत्ति को वरीयता देने, घरेलू हिंसा, ऑनर अपराध के खिलाफ और शिक्षा, प्रेम, विवाह, वेशभूषा और जीवन-शैली समेत जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं के स्वतंत्र निर्णय लेने के अधिकार के समर्थन में सृजनात्मक अभियान जैसी सामाजिक पहलकदमियां लेना.

## महिलाएं, काम और पितृसत्ता

20. आर्थिक उदारीकरण के फलस्वरूप महिलाएं और बड़ी संख्या में रोजगार के दायरे में खिंच आई हैं— परंतु उन्हें यह रोजगार अधिक संवेदनशील और असुरक्षित क्षेत्रों में हासिल हुआ है। इन क्षेत्रों में शोषण कभी-कभार ही शुद्ध रूप से 'आर्थिक' होता है— इस शोषण में लिंग एक महत्वपूर्ण हथियार होता है। उदाहरणस्वरूप, तमिलनाडु में नौजवान टेक्सटाइल महिला मजदूरों को अत्यंत ही अलोकतांत्रिक और शोषणमूलक स्थितियों में काम करना पड़ता है— लेकिन इसे 'सुमंगली योजना' के तहत संभव बनाया गया है, जिसे नवयुवतियों को अपने लिए दहेज अर्जन के नाम पर चालू किया गया है, यह योजना समाज में व्याप्त नवयुवतियों के शादी-विवाह की चिंता का भरपूर फायदा उठाती है। केंद्र सरकार की आशा, मध्याह्न भोजन (स्कूलों में) और आंगनबाड़ी योजनाएं भी महिलाओं द्वारा परिवार व समाज को निःस्वार्थ एवं अवैतनिक 'सेवा' दिये जाने की पितृसत्तात्मक धारणाओं के अंतर्गत शोषण करने के लिये ही बनाई गई हैं, ताकि सरकारी कर्मियों को प्राप्त होने वाले पूर्ण वेतन एवं दूसरी सुविधाएं के बजाय मजदूरियों को मात्र 'मानदेय' देने को जायज ठहराया जा सके।

21. महिलाओं के श्रमशक्ति में शामिल होने के साथ ही उनका सामना कार्यस्थल पर लिंग-विभेदीकरण से होने लगता है। उन्हें समान काम के लिए पुरुषों की तुलना में कम वेतन देना अब भी जारी है। यहां तक कि मनरेगा योजना में उन्हें पुरुषों से कम वेतन दिया जाता है : उदाहरणार्थ, उन्हें काम के घंटों के बजाय कितनी मिट्टी ढोई इस आधार पर वेतन दिया जाता है! उन्हें भेदभावपूर्ण नियमों (जैसे ड्रेस कोड लागू करना, चेहरे-मोहरे के बारे में लिंगभेदवादी मानक, इत्यादि) से भी दो-चार होना पड़ता है। यहां तक कि सम्मानजनक और ऊंचे पदों पर भी लिंग भेदभाव बेलगाम जारी है। एयर इंडिया में चालक केबिन कर्मचारियों में से महिलाओं ने इन-फ्लाइट सुपरवाइजर के बतौर नियुक्ति के अधिकार को हासिल करने के लिए लंबी कानूनी लड़ाई जीती है ; और सेना में महिलाओं को ऑफिसर के रूप में नियुक्ति के अधिकार से इस तर्क के आधार पर वंचित रखा जाता है कि सेना के जवानों से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे महिलाओं के आदेश का पालन करें। महिलाओं के चेहरे-मोहरे से संबंधित उत्पीड़नभरे मानक न सिर्फ आम तौर पर महिलाओं के साथ भेदभाव करते हैं, बल्कि खास तौर पर दलित और आदिवासी महिलाओं के खिलाफ भेदभाव करते हैं। कुछ दिन पहले उन आदिवासी महिलाओं को, जिन्होंने महाराष्ट्र में चालक केबिन कर्मियों के रूप

में प्रशिक्षण लिया था, विमानन उद्योग ने इसलिए नौकरी नहीं दी क्योंकि उन्हें बाजार के पितृसत्तात्मक मानकों और ब्राह्मणवादी नजरिये से शारीरिक रूप से अनाकर्षक माना गया।

22. घरेलू काम, बीड़ी, मिड-डे मील योजनाओं, आदि में अधिकतर श्रम शक्ति महिलाओं की है और खेतिहर श्रमिक एवं चाय बागानों जैसे सेक्टरों में भी श्रम शक्ति का अच्छा खासा हिस्सा महिलाओं का है। इन क्षेत्रों में काम की स्थितियां असुरक्षित व शोषणकारी हैं जहां लैंगिक भेदभाव, हिंसा और सम्मान पर हमला होता है। दलित खेत मजदूरों, सफाई मजदूरों और आदिवासी चाय बागान मजदूरों में महिलाओं को लैंगिक उत्पीड़न और जातीय उत्पीड़न दोनों के बीच अत्यधिक शोषणकारी स्थितियों में रहना पड़ता है। हमें महिला कामगारों की समग्र कार्यस्थितियों के अध्ययन के लिए सरकार से एक कमेटी गठन और इसकी सिफारिशों को एक तय समय सीमा में लागू करने की मांग करनी चाहिए। घरेलू कामगारों के मामले में तत्काल ही सरकार पर दबाव बनाना चाहिए कि वह अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) द्वारा 2011 में घरेलू कामगारों के लिए निर्धारित किये गये अंतरराष्ट्रीय श्रम मानकों-जिनमें औद्योगिक मजदूरों की तरह ही काम के घण्टे, साप्ताहिक अवकाश, छुट्टियां, समय पर वेतन भुगतान, संगठन बनाने और सामूहिक समझौता वार्ता का अधिकार आदि की संस्तुति की गई है- को मंजूर करे।

23. महिलाओं के श्रम को घर और परिवार के अंदर अदृश्य ही रखा जाता है। उनके श्रमिक के बतौर किरदार को महिलाओं की 'प्राकृतिक' और 'प्राथमिक' भूमिका के रूप में गढ़े गये वैचारिक छद्म का जामा पहना दिया जाता है। यहां तक कि जनगणना सर्वेक्षण में भी, उन महिलाओं को, जो "खाना बनाने, बर्तनों की सफाई, बच्चों की देखभाल, पानी भरना, जलावन इकट्ठा करना" आदि से जुड़ी हैं, अनुत्पादक 'गैर-श्रमिक' की श्रेणी में रखा गया है। साथ ही, घर की चहारदीवारी के अंदर महिलाओं के श्रम को समाज में उनका प्राथमिक क्रियाकलाप मानने की धारणा को हमेशा कार्यस्थल पर उन्हें कम वेतन देने के बहाने के बतौर इस्तेमाल किया जाता है, यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि उनको दी जाने वाली मजदूरी पुरुषों द्वारा की गई कमाई का महज पूरक है। नवउदारवादी नीतियों एवं उनके परिणामस्वरूप शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा एवं सफाई जैसी सामाजिक जिम्मेवारियों से राज्य द्वारा हाथ खींच लिये जाने ने महिलाओं पर परिवारों और समुदायों के अंदर किये जाने वाले अवैतनिक कार्यों के बोझ को बढ़ा दिया है।

24. घरेलू कार्य को अकार्य (नॉन-वर्क) की श्रेणी में रखने के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई आलोचना के बाद, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने प्रस्तावित किया है कि घरेलू महिलाओं को उनके पतियों द्वारा मानदेय दिया जाय, जिसकी गणना सरकार द्वारा घरेलू कामकाज के आर्थिक मूल्य के आकलन के आधार पर की जायेगी. यह प्रस्ताव बिल्कुल गलत और अनुपयुक्त है. तथ्य यह है कि घर के अंदर महिलाओं का अवैतनिक श्रम, मजदूरों के वेतन में गिरावट लाने में सहायता करके, पूंजीवाद को एक किस्म की सब्सिडी प्रदान करता है. घरेलू कार्य के लिये पतियों द्वारा कोई भुगतान दिया जाना कतई तर्कसंगत नहीं है क्योंकि यह भुगतान परिवार की कुल आय में कोई इजाफा नहीं करता. इसके अलावा, खतरा इस बात का है कि पति द्वारा इस किस्म का “भुगतान” वास्तव में श्रम के लिंग-आधारित विभाजन को जायज ठहरा देगा और पति को घरेलू कामकाज में हाथ-बंटाने की जिम्मेदारी से मुक्त कर देगा. यह प्रस्ताव परिवार के अंदर समग्र रूप से रुपये-पैसे पर महिलाओं के समान नियंत्रण के अधिकार को अस्वीकार करके उस पर असमान नियंत्रण को जायज ठहरा सकता है, और इसका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि महिलाओं का केवल मानदेय पर ही अधिकार है. परिवार के अंदर महिलाओं के घरेलू श्रम द्वारा किये गये सामाजिक और आर्थिक योगदान को स्वीकृति केवल तभी सार्थक हो सकती है जब वह घरेलू काम में खटने से महिलाओं को आजादी दिलाने में मदद करती है. और ऐसा तभी हो सकता है जब राज्य महिलाओं को रोजगार देने के साथ-साथ बच्चों और बूढ़ों की मुफ्त देखभाल, तथा महिलाओं के लिये सुरक्षित एवं सम्मानजनक रोजगार के साथ-साथ मुफ्त स्वास्थ्य-सेवा एवं बालवाड़ी (क्रेश), सामुदायिक रसोईघरों एवं कपड़ा धोने की व्यवस्था जैसे अन्य रूपों में सामाजिक मदद की व्यवस्था करे.

25. वैश्वीकरण के चलते ‘श्रम के महिलाकरण’ को लेकर काफी शोरगुल हुआ है. लेकिन यह उल्लेखनीय बात है कि एक ताजातरीन अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन में महिलाओं की ‘आर्थिक भागीदारी एवं अवसर’ के सवाल पर भारत को 134 देशों की सूची में 131वें पायदान पर रखा गया है. जहां देश में 15 वर्ष से ज्यादा उम्र वाले पुरुषों में 85 प्रतिशत आर्थिक गतिविधि में सक्रिय हैं, वहां उनकी तुलना में इसी आयु-वर्ग की सिर्फ 35 प्रतिशत महिलाएं ही आर्थिक गतिविधि में सक्रिय हैं (या तो कार्यरत हैं अथवा काम ढूँढ़ रही हैं). बेरोजगारी की दरें महिलाओं के मामले में बहुत ज्यादा हैं— कुछेक मामलों में तो पुरुषों से भी ज्यादा हैं. उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय सैम्पल सर्वेक्षण (एनएसएसओ)

के 61वें राउंड के अनुसार 2004-05 में 20-25 वर्ष के ग्रामीण नौजवानों के लिए बेरोजगारी की दर (जो काम ढूँढ़ रहे थे, लेकिन काम मिला नहीं था) 12 प्रतिशत थी जबकि ग्रामीण महिलाओं के लिए यही दर 15 प्रतिशत थी; जहां शहरी पुरुषों के लिए बेरोजगारी की दर 16 प्रतिशत थी, वहीं शहरी महिलाओं के लिए 27 प्रतिशत थी।

26. फिर भी, कुछेक खास परिक्षेत्रों में महिला श्रम को पुरुष श्रम की अपेक्षा ज्यादा तरजीह दी जाती है क्योंकि उन्हें सम्पूर्ण श्रमिक माना जाता है, जिनको पुरुषों की अपेक्षा कम मजदूरी दी जा सकती है, और इसके अलावा एक कारण ऐसे पितृसत्तात्मक विचार भी हैं कि महिलाएं कुछेक खास किस्म के काम करने के ज्यादा उपयुक्त हैं। इसीलिए अनौपचारिक क्षेत्र में गंदे, खतरनाक व असम्मानजनक कामों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व तुलनात्मक रूप से अधिक है। कभी-कभी महिलाओं को इसलिए भी प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि उनके यूनियन बनाने और संघर्ष में उतरने की आशा कम है (इस धारणा के विपरीत कई उदाहरणों की मौजूदगी के बावजूद), और वे असमान लैंगिक सम्बंधों के परिणामस्वरूप दबाव के आगे ज्यादा झुक सकती हैं। परिणामस्वरूप, महिलाएं श्रम कानूनों के उल्लंघन और शोषणमूलक श्रम रिवाजों का सबसे कमजोर शिकार बनती हैं। सरकार पर महिला मजदूरों, खासकर असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिला मजदूरों की स्थिति का व्यापक अध्ययन करने के लिये एक कमेटी नियुक्त करने तथा उसकी सिफारिशों को समयबद्ध तौर पर लागू करने के लिये दबाव डालना होगा।

27. सरकार द्वारा स्वयं-सहायता समूहों को 'महिला सशक्तीकरण' के मुख्य उपाय के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। मगर अतिलघु वित्तीय (माइक्रोफाइनेन्स) संस्थाएं भी महिलाओं का शोषण करती हैं और उन पर पितृसत्तात्मक व्यवस्था थोपती हैं। महिलाओं को 'बेहतर कर्जदार' समझा जाता है क्योंकि वे कम गतिशील हैं और सामाजिक 'लज्जा' के सामने ज्यादा झुक सकती हैं। कर्ज की वसूली की गारंटी के लिये 'शर्म दिलाने की कार्यनीति' के नाम पर महिलाओं को एक-दूसरे के खिलाफ खड़ा किया जाता है। अतिलघु वित्तीय संस्थाएं (एमएफआई) महिलाओं के सशक्तीकरण के बजाय उनकी संस्थागत कर्ज तक पहुंच के अभाव का फायदा उठाती हैं और शोषणकारी दर पर ब्याज उगाहती हैं, जिसके साथ कर्ज वसूली के लिये जोर-जबरदस्ती के तरीके अपनाये जाते हैं, यहां तक कि महिलाओं को कर्ज अदायगी के लिए वेश्यावृत्ति की ओर धकेलने या चढ़ी दर पर कर्ज देने वाले सूदखोरों के शिकंजे में फंसने को मजबूर होना पड़ा है। हाल ही में आंध्र प्रदेश में

अतिलघु वित्तीय संस्थाओं से जुड़ी 50 से अधिक महिलाओं के आत्महत्या के मामले दर्ज हुए हैं। बैंकों तक महिलाओं की पहुंच को बढ़ाने के बजाय सरकारें महिलाओं के लिए सिर्फ माइक्रोक्रेडिट पर ही जोर देती हैं और हाल ही में उन्होंने केवल महिलाओं के लिये बैंक खोलने जैसा प्रतीकात्मक प्रस्ताव दिया है। हमें न सिर्फ सरकारी बैंकों के जरिये महिलाओं को कर्ज उपलब्ध कराने, बल्कि माइक्रोक्रेडिट संस्थाओं को कड़ी निगरानी के मातहत लाने और उनके द्वारा दिये जाने वाले कर्ज के सूद की उच्चतम दर को कड़ाई से तय कर देने के लिये अपने संघर्ष को तीखा करना होगा।

राजनीतिक दल भी स्वयं सहायता समूहों को चुनावों के समय पैसा बांट कर वोट बैंक की तरह, और साम्प्रदायिक व जातीय गोलबंदी को पुख्ता बनाने के लिए इस्तेमाल करते हैं। हमें इस तरह से राजनीतिक मंसूबों को आगे बढ़ाने के खिलाफ स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी महिलाओं के बीच अभियान चला कर उन्हें सतर्क बनाने की जरूरत है।

28. भारत जैसे विकासशील एशियाई देशों में वैश्विक आर्थिक संकट का महिलाओं के रोजगार और उनके जीवन पर खास तौर पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि महिलाओं के रोजगार का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसे परिक्षेत्रों में है जो इस संकट से सबसे बुरी तरह से प्रभावित हुए हैं— जैसे कपड़ा उद्योग, तैयार वस्त्र उद्योग, जूता और चमड़ा उद्योग, इलेक्ट्रॉनिक उद्योग, होटल व रेस्टॉरेंट, मत्स्य पालन और निर्माण उद्योग। 2008 में जब वैश्विक संकट शुरू हुआ, तो भारत में लगभग 7,00,000 कपड़ा उद्योग के कामगार अपना रोजगार खो बैठे, जिनमें ज्यादातर महिलाएं थीं।

29. खुदरा बाजार में कॉरपोरेट कम्पनियों के प्रवेश ने भी महिलाओं के रोजगार पर चोट की है। जिन महिलाओं को अन्य परिक्षेत्रों में रोजगार हासिल नहीं हो पाता, वे छोटे-मोटे खुदरा व्यवसाय (छोटी दुकानें लगाने या फेरी करने) की शरण में जाती हैं। लेकिन बड़ी कॉरपोरेट कम्पनियों के आने और अनौपचारिक फेरीवालों को उजाड़ने की शहरी विकास नीतियों के कारण इस परिक्षेत्र में भी महिलाओं का रोजगार तेजी से घटा है। मल्टीब्रांड खुदरा बाजार में एफडीआई के आने से ग्रामीण और शहरी भारत, दोनों जगह एक ओर महिला खुदरा विक्रेताओं को यकीनन और भी बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा, दूसरी ओर इस क्षेत्र की अंतरराष्ट्रीय बड़ी कम्पनियों की महिला कर्मियों को वहां मौजूद शोषणकारी कार्यस्थितियों में काम करना पड़ेगा।



30. जैसे जैसे आर्थिक संकट गहरा होता जा रहा है, महिलायें सुरक्षित और उपयुक्त रोजगार के अवसरों के अभाव में सेक्स वर्क की ओर जाने पर मजबूर हो रही हैं। जब तक गरीब महिलाओं को सुरक्षित एवं उचित मजदूरी वाले कामों से वंचित रखा जायेगा, उनमें से कई महिलाएं शोषणकारी और खतरनाक सेक्स वर्क में शरण लेने के लिये बाध्य होंगी। भारत में सेक्स-वर्करों की बड़ी संख्या को बलपूर्वक, उनका अपहरण करके और हिंसा के जरिए इस पेशे में ढकेला जाता है। कुछेक खास उत्पीड़ित जातियों की महिलाओं को भी गुलाम बनाकर इस पेशे के लिए मजबूर किया जाता है। धार्मिक संस्थानों द्वारा देवदासी प्रणाली के रूप में इस किस्म की यौन-गुलामी को बढ़ावा दिया जाता है। हमें महिलाओं को परिस्थितियों के दबाव में मजबूर होकर सेक्स वर्क अपनाने से बचाने के लिये उन्हें सुरक्षित एवं सम्मानजनक रोजगार दिलाने के लिये, और जातीय एवं धार्मिक परम्पराओं के नाम पर चल रहे सेक्स वर्क और यौन गुलामी को खत्म करने, मौजूदा सेक्स वर्करों को जोर-जबर्दस्ती, शोषण, हिंसा और उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान करने; सेक्स-वर्करों एवं उनके आश्रितों को सामाजिक सुविधायें और पूर्ण नागरिक अधिकार (संगठन बनाने के अधिकार समेत) प्रदान करने, और साथ-ही-साथ उनके लिए सेक्स वर्क छोड़ सकने लायक परिस्थितियां बनाने के लिए संघर्ष करना होगा।

31. जिन पितृसत्तात्मक सम्बंधों के विनाश के लिए हम संघर्ष कर रहे हैं, उन्ही की एक परिणति सेक्स वर्क के रूप में हम देखते हैं- एक ऐसा शोषणकारी व अपमानजनक काम जिसका श्रोत असमान व विकृत सामाजिक सम्बंधों में है और जो किसी भी तरह से सामाजिक रूप से आवश्यक नहीं है। स्वयं सेक्स वर्करों द्वारा सूत्रबद्ध की गई मूलभूत अधिकारों, सम्मान और कलंक से मुक्ति की मांगों को जरूर स्वीकार करना चाहिए। यह जाहिर है कि सेक्स वर्करों को गैरकानूनी घोषित कर देने से उनके उत्पीड़न और शोषण का दायरा और बढ़ जाता है।

भारतीय संदर्भों में हमें यह भी समझना होगा कि सेक्स उद्योग को पूरी तरह कानूनी दर्जा प्रदान करने से (सेक्स वर्करों के विरुद्ध ही कानूनी कार्यवाही करने के प्रावधान को हटाने की जगह) इसमें वैश्विक पूंजी का प्रवेश बढ़ेगा, सेक्स टूरिज्म में वृद्धि होगी, और यहां तक कि अमेरिकी सैन्य अड्डों की सेवा में भी इसका इस्तेमाल होगा जैसा कि फिलीपीन्स और दक्षिण-पूर्व एशिया का अनुभव हमें बताता है। इस प्रकार का कानूनी दर्जा सेक्स वर्क के रूप में महिलाओं के लिए रोजगार के एक 'विकल्प' के विचार को परिपुष्ट करेगा और राज्य को गरीब महिलाओं के प्रति अपनी जिम्मेदारी से और पीछे

हटने का मौका देगा.

32. नवउदारवादी वैश्वीकरण के चलते महिला देह, खासकर तीसरी दुनियां के देशों की महिलाओं, का वैश्विक बाजार फैलने के साथ भारत में महिलाओं को देह व्यापार की ओर धकेलने के खतरे बढ़ गये हैं. कभी प्रेम में फंसा कर तो कभी नौकरी का झांसा देकर, तरह तरह के लालच देकर महिलाओं को देश के अंदर और बाहर देह व्यापार में धकेलने की घटनायें काफी बढ़ गई हैं. आदिवासी और अन्य उत्पीड़ित समुदायों में असुरक्षित महिलाओं की घरेलू श्रम के लिए मानव तस्करी भी काफी बढ़ गई है. हमें हर तरह के देह व्यापार/तस्करी के खिलाफ इस नजरिए से संघर्ष करना होगा कि इस बात की गारंटी हो सके कि इसमें आ गई महिलाओं के अधिकारों व सम्मान की पूरी तरह रक्षा हो, देह व्यापार से 'छुटकारा' दिलाने के अभिभावक-सुलभ व अमानवीय दृष्टिकोण रखने वाली तमाम एन.जी.ओ. संस्थाओं की तरह नहीं.

राजनीतिक क्षेत्र में भेदभाव

33. संसद और विधान सभाओं में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अभी भी अनुपात से अत्यधिक कम है. महिलाओं की स्वतंत्रता और दावेदारी के खिलाफ भयप्रद माहौल तैयार करना राजनीतिक फसल काटने के उपाय के बतौर इस्तेमाल किया जा रहा है. महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का सवाल अपनी कहानी खुद बयान कर रहा है. अन्य पिछड़े वर्गों (ओबीसी) की महिलाओं के लिए आरक्षण को आधार बनाकर इस विधेयक का विरोध किया गया था. लेकिन क्रमशः यह मांग पीछे चली गई है और इस विधेयक के विरोधी महिलाओं के संसद में प्रवेश के खिलाफ खुल्लमखुल्ला लिंग-पूर्वाग्रह से प्रेरित होकर टिप्पणियां कर रहे हैं. और सत्तारूढ़ यूपीए (और इससे पहले एनडीए) गठबंधनों ने लिंग-पूर्वाग्रह की इन ताकतों को अपनी मनमानी करने और कानून को नहीं पास होने देने की अनुमति देकर अपना असली चेहरा दिखला दिया है. ओबीसी और अल्पसंख्यकों के लिए कोटा की मांग को विधेयक को रोकने या उसके प्रावधानों को शिथिल करने का बहाना नहीं बनाया जाना चाहिए, और इसे महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण के दायरे में ही शामिल किया जा सकता है, अगर बिल को बिना और देर किए पास कर दिया जाय.

34. पंचायतों में 50 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित हैं, और निर्वाचित महिला प्रतिनिधिगण पितृसत्तात्मक शक्तियों को चुनौती दे रही हैं. फिर भी निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के साथ भेदभाव- उदाहरणार्थ, 'पंचपति'

की व्याधि, जहां महिला प्रतिनिधि की ओर से उनके पति सारा काम करते हैं, और विभिन्न किस्म के जातीय और लिंग-आधारित भेदभाव, अभी भी जारी हैं। राजनीति और सार्वजनिक जीवन में हर स्तर पर— पंचायत से संसद और जन आंदोलनों में— महिलाओं को अपने विरोधियों द्वारा यौनवादी (सेक्सिस्ट) एवं लिंग-भेद पर आधारित बुरे बर्ताव का शिकार बनना पड़ता है। ऐपवा से सम्बद्ध के.एन.सी.ए. की कार्यकर्ता पंचायतों में आरक्षण की तर्ज पर कार्बी आंग्लॉग ऑटोनेमस काउन्सिल में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण की मांग सक्रियता से उठा रही हैं।

35. आरक्षण को प्रतीकात्मकता (टोकेनिज्म) से आगे ले जाने के लिये और महिलाओं की आवश्यकताओं एवं चिंताओं के पक्ष में राजनीतिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक माहौल बनाने के लिये पंचायतों और संसद के दायरे से परे राजनीतिक रंगमंच पर महिलाओं की जीवंत और सशक्त भागीदारी और दावेदारी आवश्यक है।

## महिला आंदोलन और उदारीकरण : कुछ चिंताएं

36. उदारीकरण ने महिला आंदोलन के सामने नई चुनौतियां खड़ी कर दी हैं और साथ ही महिला आंदोलन के अंदर कुछेक चिंताजनक प्रवृत्तियों को जन्म दिया है। महिला समूहों का व्यापक पैमाने पर एनजीओकरण और सरकार और फंडिंग एजेन्सियों द्वारा ऐसे समूहों को फंड दिये जाने के चलते महिला आंदोलन की स्वायत्तता गंभीर रूप से विकलांग हो गई है। कई मामलों में सरकारें अपनी जिम्मेवारी को एनजीओ के कंधों पर डालकर (आउटसोर्सिंग करके) वैधता प्राप्त करने में सफल रही हैं। नीतियों को सूत्रबद्ध करने और उन्हें लागू करने में एनजीओ की भागीदारी को “भागीदारी-आधारित विकास” (पार्टिसिपेटरी डेवलपमेंट) के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। परियोजना-आधारित फंडिंग के चलते, एकल मुद्दा-आधारित संगठन के नाम पर महिला संगठन का विखंडन हुआ है और उसने फंड देने वालों को फंड लेने वाले समूह का एजेंडा तय करने की इजाजत दे दी है। फंडिंग और एनजीओकरण महिला समूहों की राज्य एवं नवउदारवादी नीतियों का मुकाबला करने की क्षमता को कारगर ढंग से प्रतिबंधित और निरुत्साहित करता है।

## स्वतंत्र नागरिक के बतौर महिलाओं के अधिकार

37. भारतीय राज्य महिलाओं को उनकी अपनी योग्यता के आधार पर नागरिक नहीं मानता, बल्कि उसे पारिवारिक और संतानोत्पादक भूमिका में ही स्वीकारता है. राज्य ने महिलाओं के अहस्तांतरणीय अधिकारों की रक्षा के दायित्व को निभाने के बजाय महिलाओं के प्रति पितृसुलभ रवैया अपना लिया है. इस प्रवृत्ति को तब देखा जा सकता है जब राज्य सामूहिक विवाहों (ग्रुप मैरिज) का आयोजन करता है, लड़कियों के लिये वैवाहिक योजनाएं चालू करता है, अथवा मंगलसूत्र के लिए पैसे बांटता है. देखने से तो यही लगता है कि ऐसी योजनायें विवाह के खर्च के बोझ से गरीब परिवारों को राहत देती हैं, लेकिन इनमें प्रायः पितृसत्तावादी अर्थ अंतर्निहित होते हैं. ऐसी योजनाओं में औरत के 'कौमार्य' को जरूरी बता कर प्रायः महिलाओं का अपमान भी किया जाता है, जैसा कि हमने मध्य प्रदेश सरकार द्वारा कराये गये 'कौमार्य' और गर्भावस्था 'परीक्षणों' में देखा. महिलाओं को सामाजिक एवं राजनीतिक स्वायत्तता प्राप्त करने में सक्षम बनाने वाली नीतियां ग्रहण करने के बजाय, इस किस्म की योजनाओं के जरिये अभिभावकों अथवा समुदाय की ओर से राज्य द्वारा विवाह के आयोजन को ही महिलाओं की सुरक्षा और कल्याण की गारंटी करने के लिये पर्याप्त मान लिया जाता है. इसके अन्य उदाहरण ऐसी योजनाएं हैं (जैसे दिल्ली सरकार की लाड़ली योजना अथवा पश्चिम बंगाल सरकार की कन्याश्री योजना) जिनका प्रकट रूप से उद्देश्य बालिका की रक्षा करना है. इस योजना के तहत बालिका के विवाहयोग्य हो जाने पर एक निश्चित नकदी राशि देने का वादा किया जाता है. विवाह की उम्र हो जाने पर नकद राशि दिये जाने के जरिये सरकार दरअसल छिपे तौर पर दहेज की ही आंशिक भरपाई कर रही है !

38. महिलाओं को नागरिक के रूप में अपने बहुत सारे अधिकारों के लिये संघर्ष करना होगा, जिसमें जन वितरण प्रणाली से राशन पाना, स्वास्थ्य और शिक्षा की सुविधा शामिल है. हालांकि पूर्वजों की सम्पत्ति पर महिलाओं के अधिकार को कानूनी तौर पर मान्यता मिल गई है, फिर भी महिलाएं कभी-कभार ही लम्बी कानूनी लड़ाइयों के बगैर अपने वाजिब हिस्से को हासिल कर पाई हैं, जिसका खर्च बहुत कम महिलाएं ही उठा सकती हैं. ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं आवासीय जमीन के लिए संघर्ष में विशेष रूप से सक्रिय हैं क्योंकि मालिक की जमीन पर बसर करने के कारण अर्द्धबंधुआ जीवन-स्थितियों से वे सर्वाधिक प्रभावित हैं. शहरों में भी महिलाएं आवास के सवाल पर, उजाड़े जाने और कॉरपोरेट भूमि हड़प के खिलाफ ; मूल्यवृद्धि के

खिलाफ और परमाण्विक तथा अन्य पर्यावरण विनाशक योजनाओं के खिलाफ संघर्ष में अत्यंत सक्रिय हैं। इन तमाम संघर्षों में महिलाओं की भागीदारी को सुदृढ़ करते हुए हमें नवयुवतियों को उन समस्त मांगों के इर्द-गिर्द गोलबंद करने पर और अधिक जोर देना होगा जो शिक्षा, रोजगार के अवसरों एवं स्वास्थ्य सुविधाओं को प्राप्त करने की गारंटी करने में केन्द्रीय महत्त्व रखती हैं (उदाहरणार्थ, छात्राओं और कामकाजी महिलाओं के लिये छात्रावास, संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं के लिये क्रेच की सुविधा, स्कूली लड़कियों के लिये मुफ्त शिक्षा और साथ ही किताबें, लैपटॉप और साइकिलों जैसी सहायक सुविधाएं और अपेक्षाकृत लम्बी मातृत्व छुट्टी, कारगर और उपयुक्त साजोसामान से लैस प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र जहां महिलाओं के लिये निशुल्क चिकित्सा व्यवस्था मौजूद हो और जिला एवं सबडिवीजन के स्तर पर अस्पतालों में पर्याप्त सीटों वाले महिला वार्ड की व्यवस्था हो)।

39. कई राज्यों में (सर्वाधिक उल्लेखनीय रूप से आंध्र प्रदेश और उत्तराखंड में और एकदम हाल में बिहार में) महिलाएं शराब-विरोधी आंदोलनों की अगली कतार में रही हैं। पुरुषों की शराबखोरी का गरीब महिलाओं के जीवन पर असर बहुत दुखदायी होता है – जिसके फलस्वरूप जो थोड़ी-बहुत आमदनी होती है उसे शराब पर उड़ा दिया जाता है – जहरीली अवैध शराब के चलते मौतें भी हो जाती हैं और इसकी वजह से महिलाओं और बच्चों के खिलाफ घरेलू हिंसा भी बढ़ जाती है। ऐसे आंदोलनों में महिलाओं ने सरकारों द्वारा महिलाओं और उनके परिवारों की भलाई की कीमत पर राजस्व बढ़ाने के लिये शराब बिक्री को प्रोत्साहन देने की नीति को अपना निशाना बनाया है। महिलाओं को इसी प्रकार के हालात का सामना पंजाब जैसे राज्यों में नशीली दवाओं के सेवन के मामलों में भी करना पड़ता है, जहां मेहनतकश युवा मजदूरों से कई-कई घण्टों तक भारी श्रम करवाने के लिए उन्हें नशीली दवाओं पर निर्भर बना दिया जाता है।

40. एक अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन दर्शाता है कि महिला स्वास्थ्य और जीवन (सर्वाइवल) के मामले में भारत का प्रदर्शन बिल्कुल निचले पायदान पर है (135 देशों की सूची में 134वें स्थान पर). भारत में प्रसव के दौरान मातृ-मृत्यु की दर विश्व में सबसे बदतर है। यहां 57.9 प्रतिशत गर्भवती महिलाएं और 56.2 प्रतिशत विवाहित महिलाएं खून की कमी (एनीमिया) से पीड़ित हैं, जो इस बात का स्पष्ट संकेत देता है कि भारतीय महिलाओं की बहुसंख्या गरीबी, स्थायी कुपोषण और लैंगिक पूर्वाग्रहों का शिकार हैं।

41. परिवार नियोजन, बंध्याकरण अभियान के नाम पर, जो अक्सर विदेशी संस्थाओं के अनुदान से संचालित होते हैं, महिलाओं को निशाना बनाया जाता है और उनकी देह को खतरे में डाला जाता है. हाल के अरसे में बिहार में अस्वास्थ्यकर स्थितियों में महिलाओं की इच्छा के खिलाफ जल्दबाजी में किए गए बंध्याकरण से संबंधित कई मामले उजागर हुए हैं, जिसके लिये अनुदान इंग्लैंड के डीएफआइडी द्वारा दिया गया था. इसके कारण बड़ी संख्या में महिलाएं मौत और अंगभंग की शिकार हुईं.

42. सरकार और दवा बनाने वाली कंपनियां डेपो-प्रोवेरा और नेट-इन जैसी सॉडिग्न और खतरनाक गर्भनिरोधक सूइयों को बढ़ावा देती हैं, और इस प्रक्रिया में महिलाओं के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करती हैं. बहुतेरी दवा कंपनियां भारत की गरीब महिलाओं को अपने प्रयोगों के लिए गिनीपिग के बतौर इस्तेमाल करती हैं और उनके द्वारा महिलाओं को, खासकर गरीब-आदिवासी पृष्ठभूमि की महिलाओं को, उन्हें पूरी जानकारी देकर उनकी अनुमति लिये बिना, टीका सम्बंधी शोध और चिकित्सकीय परीक्षण में इस्तेमाल किया जा रहा है. उदाहरणार्थ, हाल में आंध्र प्रदेश और गुजरात में 10 से 14 वर्ष की उम्र की सात आदिवासी लड़कियां ह्यूमन पैपिलोमा वायरस (एचपीवी) के टीका परीक्षण का इन्जेक्शन दिये जाने के बाद मौत का शिकार हो गईं.

43. यह चिंताजनक बात है कि भारत व्यावसायिक रूप से सरोगेट माताओं का अड्डा बन गया है, जहां गरीब भारतीय महिलाएं अपने गर्भाशय को अमीर स्वदेशी एवं विदेशी माता-पिताओं को बेच देती हैं. जरूरतमंद माता-पिता अक्सर गरीब चमड़ी और 'ऊंची' जाति की सरोगेट माताओं की मांग करते हैं. एक ऐसे उद्योग में, जो उनकी गरीबी और मजबूरी का दोहन करता है, कार्यरत ये सरोगेट माताएं आजकल अपने जीवन और स्वास्थ्य को भारी खतरे में पा रही हैं. जब तक महिला समूहों की भागीदारी के साथ, ऐसे प्रसव के औचित्य के बारे में व्यापक बहस चलाकर कोई राय नहीं बनाई जाती, तब तक के लिये इसे रोकने के बजाय भारत सरकार इसे बढ़ावा दे रही है और उसने इसे कानूनी जामा पहनाने तथा नियंत्रित करने के लिए एक विधेयक प्रस्तावित किया है.

44. हाल के दिनों में समलैंगिकों, हिजड़ों और लैंगिक अल्पसंख्यकों ने अपने अधिकार और मर्यादा के लिए और भेदभाव के खिलाफ अपनी दावेदारी जताई है. 2009 में दिल्ली हाई कोर्ट द्वारा समलैंगिकता को अपराधों की श्रेणी से बाहर करने के ऐतिहासिक फैसले के बावजूद सरकार ने अभी तक धारा 377 के सम्बंध में कोई पहल नहीं की है, जो समलैंगिकों के खिलाफ भेदभाव

बरतती है. धारा 377 को रद्द करने से इन समूहों के लिये बेहतर सुरक्षा और अधिकार की मांग करने के लिए अवसर खुल जाएंगे.

45. यह महिलाओं के संघर्षों की ही देन है कि राज्यों में महिला आयोग और केंद्र में राष्ट्रीय महिला आयोग बने. लेकिन चूंकि ये संस्थाएं राजनीतिक पक्षधरता के आधार पर की गई नियुक्तियों से भरी हैं, और इनमें खर्च के लिये धनराशि, कर्मचारियों और प्राधिकार का अभाव रहता है, इसलिये ये संस्थाएं अपने उद्देश्यों को हासिल करने से कोसों दूर रह गई हैं. यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय महिला आयोग एवं राज्य महिला आयोगों को वैधानिक शक्तियां दी जायं और इन आयोगों के प्रमुखों और सदस्यों को महिला आंदोलन में उनके अनुभवों के आधार पर तथा महिला संगठनों की राय लेकर चुना जाय, न कि राजनीतिक संरक्षण के आधार पर. महिला आयोग को महिला आंदोलन के सामने जवाबदेह होना चाहिये ; उनके लिये महिला संगठनों से सलाह-मशविरे के लिये नियमित अंतराल पर उनकी बैठकें बुलाना अनिवार्य बना देना चाहिये.

## पार्टी और महिला संगठन की पहलकदमियां एवं कार्यभार

46. उत्पीड़न, भेदभाव और अपमान के खिलाफ तथा समानता, स्वतंत्रता और मर्यादा के लिए संघर्ष ही ऐतिहासिक रूप से हमारी पार्टी और महिला संगठन के लिए मुख्य मुद्दे रहे हैं ; जिसका मुख्य आधार ग्रामीण और शहरी गरीब हैं. इस आंदोलन ने सामंती उत्पीड़न और शोषण के खिलाफ जुझारू संघर्षों में हजारों गरीब किसानों और श्रमजीवी महिलाओं (उत्पीड़ित जातियों से विशाल संख्या में) को गोलबंद किया है और इस संघर्ष को राजनीतिक आंदोलन के स्तर पर उन्नत किया है, जिसके जरिये क्रांतिकारी किसान आंदोलन के अंग के रूप में और अपने दम पर चलाये गये कम्युनिस्ट महिला आंदोलनों के रूप में, दोनों लिहाज से सामंती-कुलक व्यवस्था पर करारी चोट की गई है. सामंती-पितृसत्तात्मक शक्तियों के खिलाफ महिलाओं को गोलबंद करते हुए मंजू देवी जैसे पार्टी नेता रणवीर सेना की गोलियों से शहीद हुये हैं. यही चीज भारत के महिला आंदोलनों में हमारी महान विशिष्टता रही है. हमें इसे बनाए रखना है और इस पर और भी जोर देना है.

47. तमाम किस्म की हिंसा और शोषण के खिलाफ ग्रामीण व शहरी किसान व श्रमजीवी महिलाओं का संघर्ष ही आज भी ऐपवा के कामकाज का मुख्य आधार है. वह राज्य दमन और हिरासत में हिंसा, खासकर एफएसपीए और ऑपरेशन ग्रीन हंट के खिलाफ संघर्ष, में भी काफी सक्रिय रही है और उसने मनरेगा में कार्यरत महिला मजदूरों और खेत मजदूरों को गोलबंद करते हुए महिलाओं के लिए समान मजदूरी और अधिकार के लिए संघर्ष की अगुआई की है.

48. हाल की कई घटनाओं में, ऐपवा द्वारा किया गया हस्तक्षेप राजनीतिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण साबित हुआ है. दिल्ली में 16 दिसम्बर 2012 को सामूहिक बलात्कार की घटना के बाद हुए आन्दोलन को दिशा व नेतृत्व देने, 'बेखौफ आजादी' नारे को इस आन्दोलन के मुख्य नारे के रूप में स्थापित करने में ऐपवा की केन्द्रीय भूमिका रही. ऐसा ही एक और उल्लेखनीय उदाहरण बिहार में रूपम पाठक का मामला था, जिसमें जद(यू)-भाजपा की सरकार, शासक-वर्गीय विपक्ष और मीडिया - सबों ने शुरूआत में एकजुट होकर भाजपा के एक एमएलए की हत्या की आरोपी स्कूल शिक्षिका के खिलाफ पितृसत्तात्मक विष वमन करना शुरू किया था. ऐपवा के निर्भीक और समयोचित हस्तक्षेप ने इस तथ्य को उजागर किया कि रूपम ने विधायक और उसके निजी सचिव के खिलाफ यौन हिंसा का मामला दर्ज किया था, जिस पर पुलिस ने कोई भी कार्रवाई नहीं की थी. जल्द ही ऐपवा ने जनमत की धारा को रूपम पाठक को न्याय दिलाने के लिए संघर्ष के पक्ष में और दागी विधायक को बचाने में लगे बिहार के वरिष्ठ सरकारी नेताओं के पितृसत्तात्मक वक्तव्यों के खिलाफ मोड़ दिया. रूपम पाठक को जेल की सजा ने सीबीआई और न्यायपालिका, दोनों के पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रहों को बेनकाब कर दिया है और रूपम पाठक को न्याय दिलाने के लिए महिला आंदोलन जारी है. एकदम हाल में बिहार के गया जिले में स्कूल जाने वाली एक लड़की के साथ सामंती लंपटों द्वारा सामूहिक बलात्कार के खिलाफ पार्टी और ऐपवा ने एक लोकप्रिय संघर्ष का नेतृत्व किया, जिस पर पुलिस ने गोली चलाई और बर्बर दमन किया. राज्य दमन और यौन-हिंसा की अन्य घटनाओं से जोड़ कर इस मुद्दे पर एक राज्यव्यापी बंद आयोजित हुआ. उत्तर प्रदेश के निघासन में जून 2011 में थाने के अन्दर पुलिस वालों द्वारा एक 14 वर्षीया मुस्लिम लड़की से बलात्कार के खिलाफ आन्दोलन को ऐपवा और भाकपा(माले) ने नेतृत्व दिया जिसके चलते सरकार को सी.बी.आई. जांच का आदेश देने के लिए बाध्य होना पड़ा. पंजाब में खेमस से संबद्ध दलित महिला खेतिहर मजदूरों को आवासीय जमीन के लिए आन्दोलन करने पर बड़ी संख्या में गिरफ्तार किया गया. इस मांग का उन महिलाओं के लिए काफी महत्व है जिनकी अपना घर व जमीन न होने के कारण घर बनाने व शौच आदि के लिए भू-स्वामियों पर निर्भरता है और इसके लिए उन्हें काफी अपमान झेलना पड़ता है.

49. महिला फैक्टरी मजदूर, बागान मजदूर, निर्माण मजदूर, बीड़ी मजदूर, बैंक और ऑफिस के कर्मचारी आदि हमारे सामान्य ट्रेड यूनियन आधार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं. जहां कहीं संभव हो, महिला संगठन को उनके बीच नियमित रूप से कार्य करना चाहिए ताकि एक महत्वपूर्ण सहायक आधार विकसित किया जा सके. ऐसा काम केवल सम्बंधित ट्रेड यूनियन के साथ सहयोग के आधार पर



ही किया जा सकता है, ठीक जैसे कि ग्रामीण गरीबों के बीच हमारा कार्य खेमस और अखिल भारतीय किसान महासभा की स्थानीय इकाइयों के साथ तालमेल बिठाकर किया जाता है।

50. लेकिन कुछ ऐसे भी क्षेत्र हैं जहां ऐपवा अपने स्तर से मेहनतकश महिलाओं को संगठित करने की सीधे पहल करती है – उदाहरण के लिए झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाली महिलाएं, जो शहर में हमारे जनाधार का सर्वप्रमुख हिस्सा हैं। कुछ शहरों व कस्बों में, उदाहरण के लिए पश्चिम बंगाल में, ऐपवा की साथियों ने घरेलू कामगारियों के स्थानीय संगठन बनाये हैं।

51. फिर गरीब और मध्यम किसान पृष्ठभूमि से आई महिलाएं हैं, जो ग्रामीण अर्थतंत्र के लगातार विविधीकरण के चलते बड़ी तादाद में अन्य पेशों में शामिल हो रही हैं। उनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं मानदेय एवं प्रोत्साहन-राशि आधारित कर्मी, जिनकी संख्या देश भर में लगभग 30 लाख है और यह संख्या अभी भी बढ़ रही है। जैसे स्थायी नौकरियों का आकस्मिक (कैजुअल) नौकरियों में बदलाव, कम मजदूरी वाले काम का अत्यंत शोषणमूलक महिलाकरण, न्यूनतम वेतन तक दिये जाने से इनकार, शत-प्रतिशत सार्वजनिक परियोजनाओं में कार्यरत मजदूरों को भी सरकारी कर्मी का दर्जा देने से इन्कार- यह सब नवउदारवादी श्रम नीति का अंग है और इसकी शिकार महिलाओं ने संगठित होने तथा आर्थिक न्याय व सामाजिक मर्यादा के लिए संघर्ष करने की जबर्दस्त इच्छा शक्ति दिखलाई है। किसान परिवार का सदस्य होने के नाते उनका किसान वर्ग के जीवन और संघर्षों के साथ उनका जीवंत रिश्ता बरकरार है और साथ ही वे मजदूर होने के चलते आर्थिक वंचना के खिलाफ तथा महिला होने के चलते अपमान और उत्पीड़न के खिलाफ सक्रियता के साथ संघर्ष करती हैं।

52. वास्तविक जीवन में वर्गीय एवं लैंगिक विशिष्टताओं एवं आकांक्षाओं के परस्पर गुंथे होने के चलते यह स्वाभाविक है कि ट्रेड यूनियन केन्द्र और महिला संगठन दोनों ने इस परिक्षेत्र में हमारे कामकाज के विस्तार में योगदान किया है। अब तक हमारी मुख्य उपलब्धि 'आशा' यूनियनों की अखिल भारतीय फेडरेशन का निर्माण रही है, जिसने सितम्बर 2011 में राष्ट्रीय राजधानी में एक प्रभावपूर्ण धरना संगठित किया। चूंकि इसकी मुख्य मांगें केन्द्र सरकार को, और एक हद तक राज्य सरकारों को भी अपना निशाना बनाती हैं, अतः यह फेडरेशन केवल स्थानीय दायरे से बाहर निकलकर तथा तेजी से अपना विस्तार करके ही अपने प्रतिद्वंद्वियों के साथ प्रतियोगिता कर सकती है और कुछेक उपलब्धियां हासिल कर सकती है। मध्याह्न भोजन की रसोइयों (भोजनमाताओं) के राज्य एवं जिला स्तर के संगठनों का भी निर्माण किया गया है। उत्तर प्रदेश में ऐपवा ने देवरिया में जिला

स्तर पर भोजनमाताओं को संगठित किया है और एक सफल संघर्ष का नेतृत्व किया जिसके कारण मजबूर होकर जिलाधिकारी को उन्हें हटा देने के प्रयास को रोकना पड़ा. इस किस्म के संगठनों और संघर्षों का और बड़े पैमाने पर विस्तार करने की भारी संभावनाएं मौजूद हैं.

53. जब महिला संगठन के कार्यकर्ता इन श्रमिक महिलाओं को मुख्य रूप से उनके तात्कालिक यानी आर्थिक मांगों पर संगठित करती हैं, तो वे महिला आंदोलन के मुद्दों से भटक कर आर्थिक संघर्ष अथवा अर्थवाद की ओर नहीं मुड़ जातीं. इसके विपरीत, वे ऐपवा को अपना एक स्वतंत्र आधार, जो एक बढ़ता, गतिशील आधार भी है, मुहैया करा रही हैं, जिसका उचित मार्गदर्शन करने पर वह व्यापक महिला आंदोलन का एक संगठित जत्था बन जा सकता है. अतः इस व्यवहार को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि इस चलायमान, सामाजिक रूप से गतिशील, अपेक्षाकृत शिक्षित (जैसे आशा एवं आंगनबाड़ी श्रमिक) और कामकाजी महिलाओं के जुझारू जत्थे के भीतर छिपी विराट संभावनाओं को योजनाबद्ध ढंग से काम में लगाया जा सके. स्वाभाविक रूप से, यह महिला संगठन और ट्रेड यूनियन केंद्र के बीच घनिष्ठ आपसी राजनीतिक समझदारी और सांगठनिक तालमेल की आवश्यकता को सामने लाता है.

54. एक व्यापक आधार वाले महिला आंदोलन को विकसित करने के लिए कॉलेज की छात्राओं, शिक्षकों, मीडिया से जुड़ी महिलाओं और आम तौर पर बुद्धिजीवियों के बीच अपनी पहुंच बढ़ाना नितांत आवश्यक है. हमारे जैसे संगठन के लिए, जिसका मुख्य सामाजिक आधार ग्रामीण गरीबों के बीच है, यह एक वास्तविक चुनौती है. महिलाओं की पत्रिकाएं, जो हिंदी, अंग्रेजी, असमी और बांग्ला में प्रकाशित होती हैं, को इस उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए.

55. इन वर्गों और तबकों के अलावा, जो एक अन्य हिस्सा हमलोगों से विशेष ध्यान की मांग करता है, वह है पंचायतों में महिला जन प्रतिनिधिगण. जमीनी स्तर पर सामाजिक और राजनीतिक रूप से सक्रिय ये प्रतिनिधिगण जनता के बीच में जाने और उनसे जानकारी इकट्ठा करने के लिए बहुत ही अच्छा माध्यम बन सकते हैं. महिला संगठन ग्रामीण स्तर पर सभाएं कर सकता है और उसमें सभी महिला जन-प्रतिनिधियों एवं उम्मीदवारों को आमंत्रित करके उनके साथ महिलाओं की आम समस्याओं – उदाहरणार्थ, पेयजल और स्वास्थ्य सेवा से जुड़ी समस्याओं – और साथ-ही-साथ महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण लागू होने के बाद निर्वाचित महिला जन-प्रतिनिधियों से अपेक्षित भूमिका और उनकी वास्तविक भूमिका, और पंचायत जैसे राजनीतिक विषयों पर सामने आने वाली समस्याओं पर बातचीत कर सकता है. चुनाव के बाद महिला संगठन को महिला जन-प्रतिनिधियों को संकीर्ण

परंपराओं के साथ-साथ जातीय और लैंगिक भेदभाव के खिलाफ संघर्ष करने, पुरुष 'अभिभावक' से स्वतंत्र होकर काम करने तथा आम जनता के सामान्य मुद्दों के साथ-साथ महिला मुद्दों को मजबूती से उठाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिये और इसमें सहयोग करना चाहिए,

56. पार्टी लम्बे अरसे से महिला पार्टी सदस्यों की संख्या में बढ़े पैमाने पर वृद्धि और महिला कार्यकर्ताओं एवं नेताओं की संख्या में बढ़ोत्तरी को सुनिश्चित करने के लिये उनके वैचारिक-राजनीतिक विकास को उन्नत करने के प्रति चिंतित रही है. हमें इस चुनौती से निपटने के लिये विभिन्न किस्म के सांगठनिक और शैक्षणिक उपायों को जारी रखना होगा. एक कम्युनिस्ट पार्टी के लिये (केवल हमारे महिला संगठन के लिये ही नहीं) पितृसत्ता-विरोधी संघर्षों पर अधिक जोर देना आवश्यक है. हमें इस बात को भी मानना होगा कि समाज पर- और इसी वजह से हमारी कतारों पर और हमारे नेतृत्व पर भी- पितृसत्तात्मक लोकमत की पकड़ बड़ी मजबूत है. इसीलिये हमारे राजनीतिक व्यवहार के साथ-साथ पितृसत्तात्मक विचारधारा एवं आचरणों का विश्लेषण करने तथा उन्हें चुनौती देने के लिये सतत एवं निर्मम रूप से अपने अंदर झांकने और सचेत प्रयास करने की भी जरूरत है. केवल तभी हम प्रगतिशील एवं लोकतांत्रिक पितृसत्ता-विरोधी विचारों में जान फूंक सकते हैं और उन्हें ऐसी भौतिक शक्ति में बदल सकते हैं जो हमारे समूचे आंदोलन और व्यापक समाज को ऊर्जा प्रदान करेगी.



# छात्र युवा आंदोलन के कार्यभार और दिशा

1. लगातार गहराते आर्थिक और सामाजिक संकट तथा शासक अभिजन की तेजी से घटती विश्वासनीयता और वैधता के समक्ष हम एक बार फिर से देश भर में मजबूत छात्र-युवा आंदोलन के उत्साहजनक लक्षण देख रहे हैं। भ्रष्टाचार, कारपोरेट लूट और बड़े कारपोरेशनों तथा शासक अभिजन के बीच बढ़ती सांठगांठ के विरुद्ध जो हवा 2011 से बहनी शुरू हुई थी, वह दिसंबर 2012 के आते-आते प्रबल झंझावात में बदल गई, जिसका विस्फोट ठीक देश की राजधानी में 23 साल की पैरामेडिकल छात्रा के साथ चलती बस में सामूहिक बलात्कार और नृशंस अत्याचार की घटना तथा बाद में सिंगापुर के अस्पताल में उसकी मृत्यु को केन्द्र कर पीड़िता को न्याय दिलाने के सवाल पर हुआ। छात्र-युवा आंदोलन में क्रांतिकारी जनवाद के झंडाबरदार आइसा और इन्नौस कारपोरेट लूट और यौन हिंसा के विरुद्ध तथा महिलाओं की आजादी के लिये जारी आंदोलन में छात्र युवा समुदाय को गोलबंद करने में मुख्य भूमिका निभाते रहे हैं।

2. युवक-युवतियों की समान भागीदारी वाला दिल्ली का यह युवा-उभार (जो जल्द ही देश के अन्य हिस्सों में भी फैल गया) ऐसा पहला उदाहरण था जब यौन हिंसा का सवाल एक ऐसे व्यापक और टिकारू अभियान के केंद्र में आ गया, जिसमें लोगों ने पानी की बौछार, आंसू गैस और बर्बर लाठीचार्ज का बहादुरी से सामना किया। जब शासक अभिजन युवा और उनकी आकांक्षाओं के बारे में बड़ी-बड़ी बातें बोल रहे हैं और प्रतिक्रिवादी राजनीतिक ताकतें अपने संकीर्ण और लोकतंत्र-विरोधी राजनीतिक एजेंडे के हित में नौजवानों को

इस्तेमाल करने की बेताब कोशिश कर रही हैं, उस समय लोकतंत्र के प्रमुख सवालों के इर्द-गिर्द युवा शक्ति की यह स्वतंत्र दावेदारी एक बेहद क्रांतिकारी विकास का द्योतक है।

3. लैटिन अमरीका से लेकर यूरोप तक और अकुपाई आंदोलन से लेकर अरब मुल्कों के आंदोलनों (अरब वसंत) तक, तहरीर चौक से लेकर शहबाग चौक तक के विरोध प्रदर्शनों में नव-उदारवाद, साम्राज्यवाद और अत्याचारी शासन के खिलाफ वैश्विक जागरण में युवाओं की मजबूत छाप रही है। इस अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में भारत में युवाओं की बढ़ती लोकतांत्रिक दावेदारी ने इस साम्राज्यवादी झूठ को, कि युवा-विद्रोह के दिन बीत गए और युवाओं के सपनों और आकांक्षाओं का एकमात्र उत्तर बुर्जुआ उपभोक्तावाद है, जबर्दस्त झटका दिया है।

4. स्वतंत्र भारत में नक्सलबाड़ी वह पहला युवा विद्रोह था जो किसान विद्रोह के समर्थन में खड़ा हुआ था और नव-जनवादी भारत के निर्माण के क्रांतिकारी सपने से उत्प्रेरित था। जब शासक वर्ग सोच रहे थे कि उन्होंने इसे दबा दिया है, ठीक उसी समय भ्रष्टाचार और तानाशाही के विरुद्ध 1974 के आंदोलन की शक्ति में युवा उभार की दूसरी लहर आई। मौजूदा छात्र-युवा जागरण को इसी कड़ी का तीसरा बड़ा पड़ाव कहा जा सकता है। हालांकि इसमें क्रांतिकारी सामाजिक रूपांतरण या राजनीतिक बदलाव का कोई स्पष्ट एजेंडा अब तक नहीं भी रहा हो, लेकिन सामंती पितृसत्तात्मक बेड़ियों, कारपोरेट-साम्राज्यवादी लूट और निरंकुशता तथा राजकीय दमन के विरुद्ध मजबूत उभार की संभावना इसमें जरूर निहित है।

5. इन सभी युवा विद्रोहों में किसी भी जीवंत युवा आंदोलन के बुनियादी लक्षण उजागर हुए हैं— (क) व्यापक सामाजिक-राजनीतिक सवालों, खासकर, लोकतंत्र, आजादी, न्याय और सामाजिक रूपांतरण के प्रति युवा की संवेदनशीलता, (ख) जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति और सामाजिक हैसियत या पृष्ठभूमि की दीवारों को लांघ कर जुझारू एकता निर्मित करने की युवा की क्षमता, और (ग) प्रतिरोध की अदम्य भावना और किसी भी अनुचित व दमनकारी सत्ता के सामने झुकने से इनकार। अत्यंत विविध परिस्थितियों के समक्ष युवाओं की विशिष्ट स्थितियों और जरूरतों तथा आकांक्षाओं को मान्यता देते हुए भी हमें युवा आंदोलन के व्यापकतर चरित्र को कभी नजर से ओझल नहीं होने देना चाहिए।

6. भारत के सरकारी विमर्श में युवा महज एक जनसांख्यिकीय श्रेणी के रूप में पेश किया जाता है। भारत में नौजवानों की बढ़ती आबादी को आधार बनाकर जनसांख्यिकीय फायदा बटोरने का ढोल तो बहुत पीटा जाता है लेकिन युवाओं की बुनियादी जरूरतों, आकांक्षाओं और अधिकारों को कभी सच्ची मान्यता नहीं दी जाती। भारत की आधी आबादी की उम्र 25 साल से कम है, दो तिहाई आबादी की उम्र 35 साल से कम है और फलस्वरूप भारत में दुनिया की सबसे अधिक युवा आबादी है। इस तथ्य को चमत्कारी आंकड़े की तरह ही नहीं बरता जा सकता, असल सवाल तो यह है कि देश अपने युवाओं पर कितना निवेश कर रहा है और अपनी प्रतिभा एवं अपार क्षमता की तराश, अभिव्यक्ति और उसे विकसित करने के लिए युवाओं को किस तरह के अवसर मिल रहे हैं!

7. शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, जीवन के विविध क्षेत्रों में अवसरों की भरपूर उपलब्धता, दूरस्थ क्षेत्रों के और उपयुक्त सुविधाओं से वंचित पिछड़ी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि के छात्रों एवं युवाओं के लिए सकारात्मक उपाय (अफर्मेटिव ऐक्शन) और चयन की स्वतंत्रता तथा भय से मुक्ति का एजेंडा भारत के बच्चों और युवाओं के संतुलित और स्वस्थ विकास के लिए केंद्रीय विषय है। फिर भी ये ही सवाल भारत की कारपोरेट-संचालित, साम्राज्यवाद-निर्देशित विकास की रणनीति के सबसे उपेक्षित पहलू हैं। नतीजा यह है कि यहां बेरोजगार लोगों की विशाल रिजर्व वाहिनी है, जो भारतीय श्रम बाजार में सस्ते श्रम की प्रचुर मात्रा में आपूर्ति और विश्व पूंजी की जरूरतों को पूरा करने के लिए विदेशों की ओर कुशल श्रमिकों और पेशेवरों के निरंतर प्रवाह (ब्रेन ड्रेन) की गारंटी करती है।

8. सबके लिए गुणवत्तापूर्ण सार्वभौमिक शिक्षा की गारंटी और शिक्षा को तीव्र व समग्र मानव विकास के उपकरण के रूप में इस्तेमाल करने के बजाय शासक वर्ग शिक्षा को समाज में सभी संभव तरीकों से विषमता पैदा करने और बढ़ाने के माध्यम के रूप में इस्तेमाल कर रहा है। चाहे गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा की बात हो या उच्च शिक्षा की, खासकर चिकित्सा विज्ञान और प्रौद्योगिकी की विभिन्न शाखाओं के विशेष क्षेत्रों में, शिक्षा का व्यवसायीकरण और निजीकरण आम बात हो गई है। जहां अधिकांश सरकारी शिक्षा संस्थानों में शिक्षकों और शैक्षिक सुविधाओं की हमेशा कमी बरकरार रखकर अराजकता की स्थिति बनी रहने दी जाती है, वहीं निजी कोचिंग सेंटर कुकुरमुत्ते की तरह समूचे देश में उग आए हैं। भारत में विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश से व्यवसायीकरण और निजीकरण की यह प्रवृत्ति और मजबूत होगी,

जिससे उच्च शिक्षा अभिजात्य लोगों के लिये ही सुलभ रह जाएगी।

9. यूपीए सरकार द्वारा पारित किये गये तथाकथित शिक्षा का अधिकार कानून ने तो असल में शिक्षा के निजीकरण को संस्थाबद्ध कर अच्छी गुणवत्ता वाली महंगी स्कूली शिक्षा से गरीब छात्रों को वंचित कर दिया है। उच्च शिक्षा के कारपोरेटों के हाथों सौंप देने की दिशा में भी यूपीए सरकार कई बिल ले कर आई है जिनसे निजी व विदेशी संस्थायें किसी भी नियामक ढांचे से मुक्त रहेंगे और सामाजिक न्याय के प्रति उनकी कोई जवाबदेही नहीं होगी। राज्य सरकारों ने भी निजी विश्वविद्यालय खोलने के लिए कानून बनाने शुरू कर दिये हैं। शिक्षकों व छात्रों के लगातार प्रतिरोध के बावजूद दिल्ली विश्वविद्यालय में चार वर्षीय स्नातक कार्यक्रम थोप देना भारतीय उच्च शिक्षा को अमेरिकी मॉडल से जोड़ने की शासक वर्गीय मंशा का एक और उदाहरण है, जिसमें आर्थिक व सामाजिक रूप से वंचित छात्रों के उच्च शिक्षा से ड्राप-आउट होने को संस्थाबद्ध कर दिया गया है।

निजीकरण की नीति को उलट देने और समान स्कूल प्रणाली के जरिए सस्ती व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के सार्वभौमिक अधिकार को हासिल करने तथा उच्च शिक्षा को ग्रामीण, मजदूर वर्ग और निम्न-मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों की पहुंच में लाने के लिए छात्र-युवा आंदोलन को कठिन लड़ाई लड़नी होगी। निजी स्कूलों में फीस वृद्धि और गरीब छात्रों के लिए बेहद कम सीटों के प्रावधान के खिलाफ संघर्षों में अभिभावकों एवं आम लोगों को भी शामिल करना चाहिए। कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में फीस वृद्धि के खिलाफ एवं हॉस्टल, पुस्तकालयों व प्रयोगशालाओं के सुविधाओं के लिए संघर्ष तेज करने होंगे।

10. शिक्षा के सम्प्रदायीकरण और भगवाकरण की सुनियोजित नीति, खासकर भाजपा-एनडीए शासित राज्यों में, छात्र आंदोलन के सामने गंभीर चुनौती बन गई है। इसके अलावा, शिक्षण संस्थानों एवं गैर-भाजपा सरकारों द्वारा किये गये शर्मनाक आत्मसमर्पण के चलते महानगरों के विश्वविद्यालयों तक में साम्प्रदायिक संगठनों ने हिंसात्मक प्रतिवादों के जरिये पाठ्यक्रम को संसर करवाने में सफलता हासिल कर ली है। इसके प्रमुख उदाहरण हैं शिवसेना की युवा शाखा और अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद द्वारा की गई हिंसा के बाद मुंबई विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम से रोहिंटन मिस्त्री के उप. न्यास 'सच ए लांग जर्नी' (इतना लम्बा सफर) का वापस लिया जाना और दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम से ए.के. रामानुजम के मौलिक निबंध 'श्री हंड्रेड रामायणाज' (तीन सौ रामायण) को वापस लिया जाना। छात्र



आंदोलन को भगवाकरण और सेंसरशिप, चाहे उसे सरकारों द्वारा लादा जा रहा हो या साम्प्रदायिक संगठनों द्वारा, के खिलाफ मजबूत प्रतिरोध खड़ा करना होगा। इसके अलावा, छात्र आंदोलन को इस बात के लिये भी लड़ना होगा कि पाठ्यक्रम और शिक्षा-सम्बंधी रीति-नीति तथा साथ ही स्कूलों एवं उच्च शिक्षा की भाव-संस्कृति सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से तथा भाषाई तौर पर समेकित हो। साथ ही छात्र आंदोलन को शिक्षण सम्बंधी ढांचों में गहरे जड़ जमाये वर्गीय, जातीय और लैंगिक भेदभाव को जड़ से उखाड़ फेंकने की कोशिश करनी होगी।

11. शासक वर्ग उच्च शिक्षा के दायरे से बड़ी संख्या में छात्रों को बाहर रखने की कोशिश तो कर ही रहा है, साथ ही वह कैम्पस लोकतंत्र का हनन करने और अपनी यूनियन का चुनाव तथा अपनी बात रखने के उनके बुनियादी लोकतांत्रिक अधिकार को खत्म करने की भी जी-तोड़ कोशिश कर रहा है। अनेक विश्वविद्यालयों में नियमित चुनाव नहीं होते— मसलन पटना विश्वविद्यालय में हाल में चुनाव तकरीबन तीन दशक बाद हुए। यहां तक कि जेएनयू, जो अपने लोकतांत्रिक माहौल के लिए जाना जाता है, में भी लिंगदोह समिति द्वारा थोपी गई अनुचित व अलोकतांत्रिक पाबंदियों के चलते चार साल तक चुनाव नहीं हो सके। कैम्पस लोकतंत्र की बहाली और विस्तार के सवाल पर छात्र आंदोलन में आइसा अगुवा मोर्चे पर रहा है।

12. संविधान के बुनियादी अधिकारों में रोजगार का अधिकार शामिल नहीं रहा है। दुनिया की सबसे बड़ी रोजगार गारंटी योजना के बतौर जिसका बहुत ढोल पीटा गया वह मनरेगा भी रोजगार गारंटी की धारणा का मखौल है। बेरोजगारी भत्ते का इस्तेमाल एकाध राज्यों में चुनाव जीतने के लिए रोटी के टुकड़े फेंकने की तरह किया जाता है, बेरोजगारों की बढ़ती फौज की सामाजिक सुरक्षा का कोई प्रावधान है ही नहीं। इसलिए सम्मानजनक रोजगार और रोजगारहीन अवधि में पर्याप्त बेरोजगारी भत्ता का बुनियादी अधिकार हासिल करने के लिये लड़ना युवा आंदोलन का एक जरूरी कार्यभार है।

13. उच्च शिक्षा या पेशेवर प्रशिक्षण के अधिकाधिक मंहगे और पहुंच से दूर होते जाने के कारण, जो भी काम उपलब्ध होते हैं उनके पीछे लाखों नौजवान भागते हैं। ये काम ज्यादातर अनुबंध या ठेके पर कराए जाते हैं, जहां बहुत कम तनखाह देकर इन युवाओं पर काम का भारी बोझ और काम के ज्यादा घंटे लाद दिये जाते हैं। नौकरी का नियमितीकरण और वेतन/मजदूरी व कार्यस्थितियों में सुधार इन युवा कामगारों के लिए केंद्रीय प्रश्न बना हुआ है। सम्बंधित ट्रेड यूनियनों के साथ घनिष्ठ सहयोग के जरिये इस केंद्रीय सवाल

को हल करने में युवा आंदोलन को लग जाना चाहिए।

14. जन-शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य और सफाई, नागरिक सुविधाएं, ऊर्जा, सार्वजनिक परिवहन, पर्यावरण के साथ न्याय तथा आपदा-प्रबंधन जैसे सवाल भी छात्र-युवा आंदोलन के प्रमुख मुद्दों के रूप में शामिल होने चाहिए। हम ऐसी विडंबनापूर्ण स्थिति से गुजर रहे हैं जिसमें बगैर किसी योजना के, और पर्याप्त तथा समुचित आधारभूत संरचना या न्यूनतम सार्वजनिक सुविधाओं के बिना ही शहरीकरण हो रहा है। इन कमियों को दूर करने की जिम्मेदारी लेने की बजाय नव-उदारवादी राज्य हरेक बुनियादी सेवा का निजीकरण करने में व्यस्त है। ग्रामीण क्षेत्र तो आधारभूत ढांचे, बुनियादी सेवाओं और नागरिक सुविधाओं के मामले में और भी उपेक्षित हैं। इसलिए बुनियादी सुविधाओं, सस्ती रिहायश और कारगर सेवाओं का सवाल बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। युवा आंदोलन को इन्हें अपने एजेंडे में शामिल करना होगा।

15. नक्सलबाड़ी की परंपरा से प्रेरित छात्र-युवा आंदोलन हमेशा ही क्रांतिकारी सामाजिक रूपांतरण के सपने से संचालित रहा है। इसलिए मेहनतकश जनता, खासकर ग्रामीण गरीबों, और उनके संघर्षों के साथ एकजुटता क्रांतिकारी युवा हिरावल का बुनियादी सिद्धांत रहा है। छात्र-नौजवानों की विशाल बहुसंख्या से जुड़े तमाम तात्कालिक एवं महत्वपूर्ण मुद्दों को हाथ में लेते हुए और आंदोलन के आधार को व्यापक बनाने की कोशिश करते हुए भी अगुवा कार्यकर्ताओं को इस बुनियादी क्रांतिकारी उसूल को बुलंद रखना और उस पर अमल करना होगा। वर्तमान दौर में छात्र-युवा आंदोलन को कारपोरेटों द्वारा जमीन हड़प और खनिज की लूट के खिलाफ किसान-आदिवासी प्रतिरोध तथा औद्योगिक लोकतंत्र व ट्रेड यूनियन अधिकारों के लिए मजदूर वर्ग आंदोलनों के पक्ष में साहस के साथ खड़ा होना होगा।

16. युवाओं की एकताबद्ध दावेदारी की विराट संभावना से भयभीत शासक वर्ग नौजवानों को जातीय, सांप्रदायिक, भाषाई और क्षेत्रीय आधारों पर बांटने की कोशिश लगातार करता रहता है। महाराष्ट्र आज बिहार, झारखंड और उत्तर प्रदेश से काम की तलाश में बाहर गए युवा कामगारों को व्यवस्थित रूप से निशाना बनाने तथा उनके ऊपर हमला करने की संकीर्ण क्षेत्रवादी राजनीति का अखाड़ा बना हुआ है।

असम में कोंकराझाड़ हिंसा के बाद का कुख्यात 'एसएमएस अभियान' और नतीजे के बतौर फैले हड़कम्प के अनुभव ने पूर्वोत्तर क्षेत्र के छात्रों और युवा प्रवासी मजदूरों द्वारा महसूस की जाने वाली असुरक्षा की स्थिति को जगजाहिर कर दिया।

17. देश के अनेक हिस्सों में उत्पीड़ित जाति के छात्र-युवाओं को सामंती हिंसा और सामाजिक भेदभाव तथा अवमानना से दो-चार होना पड़ता है। दलितों एवं आदिवासी छात्र-छात्राओं को आर्वाटित छात्रावासों में मौजूद दयनीय स्थिति, कई राज्यों में आदिवासी लड़कियों का सुनियोजित ढंग से यौन शोषण किये जाने की शर्मनाक खबरें, इंजीनियरिंग कॉलेजों में दलित-आदिवासी छात्र-छात्राओं की प्रायः होने वाली अमानवीय रैगिंग, और बिहार में रणवीर सेना के मुखिया की हत्या के बाद दलित छात्रावासों पर हुए हालिया हमले हमें इसकी मिसाल देते हैं कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था और व्यापक समाज में अभिर्वाचित सामाजिक पृष्ठभूमि से आये छात्र-छात्राओं को किस किसम की अमानवीय यातनायें और पूर्वाग्रह झेलने पड़ते हैं। जाति व्यवस्था के विरुद्ध जाकर विवाह करने वाले युवाओं, खासकर दलित युवाओं, को खाप पंचायतों और प्रतिगामी शक्तियों की हिंसा का शिकार होना पड़ता है। संघ परिवार और तमाम अन्य रूढ़िवादी संगठन युवाओं, विशेषकर युवतियों की आजादी पर हमला बोल रहे हैं। क्रांतिकारी छात्र-युवा आंदोलन को देश के किसी भी हिस्से में सामंती, जातिवादी, सांप्रदायिक, अंधराष्ट्रवादी, पितृसत्तात्मक और संकीर्णतावादी हिंसा के खिलाफ बहादुरी से खड़ा होना होगा।

18. अक्सर ही अनुसूचित जाति/जनजाति के लिये नौकरियों में आरक्षित पद खाली पड़े रह जाते हैं और उदारीकरण आज के दौर में नौकरियों और शिक्षा में अनुसूचित जाति/जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्गों के लिये आरक्षण को खत्म करने के सुनियोजित प्रयास चलाये जा रहे हैं। आइसा ने इस किसम के प्रयासों के खिलाफ कुछेक महत्वपूर्ण एवं सफल संघर्षों को संचालित किया है। आइसा के आन्दोलन के दबाव में विश्वविद्यालयों में ओ.बी.सी. कोटा को उलट देने की कोशिशों के खिलाफ आये ऐतिहासिक फैसले का राष्ट्रीय महत्व है। छात्र आंदोलन को 'मेरिट' के नाम पर चलाये जा रहे विचारधारात्मक हमलों के खिलाफ अनुसूचित जाति/जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्गों के लिये आरक्षण के पक्ष में डटकर खड़ा होना होगा साथ ही आरक्षण कोटा को उलट देने के प्रयासों का विरोध करना होगा।

19. देश के अनेक हिस्सों में मुस्लिम और आदिवासी युवा लगातार राज्य द्वारा संचालित धर-पकड़ (विच हंट) अभियान के शिकार बन रहे हैं। अनेक मुस्लिम और आदिवासी युवाओं पर क्रमशः आतंकवादी और माओवादी होने का ठप्पा लगाकर फर्जी केस लाद दिया गया है और वे जेल में कैद हैं, जबकि कुछ लोग तो फर्जी एनकाउंटर और थाने की हिरासत में मौत के शिकार भी हुए हैं। कश्मीर, मणिपुर और अन्य इलाके, जहां निरंकुश सशस्त्र बल विशेष

अधिकार कानून (आर्म्ड फोर्सिज स्पेशल पॉवर्स ऐक्ट) लगा हुआ है या वे इलाके जहां दमनकारी आपरेशन ग्रीन-हंट चल रहा है, वहां बड़ी संख्या में नौजवान 'युद्ध' जैसी स्थिति का सामना कर रहे हैं। हाल के अनेक मामलों में जैसा देखने में आया, राजद्रोह का आरोप लगाकर या आपराधिक कानून की अनेक धाराएं थोपकर राजकीय दमन के लंबे हाथ नागरिकों के बुनियादी अधिकारों का भी हनन करने की कोशिश करते हैं। जन आंदोलनों की अगली कतार पर खड़े छात्र-छात्राओं को— जैसे अलग तेलंगाना राज्य के लिये और श्रीलंका में तमिलों के जनसंहार के पीड़ितों को न्याय दिलाने के लिये चले आंदोलनों में शामिल छात्र-छात्राओं को— राज्य दमन का शिकार बनना पड़ा है। इसलिए छात्र-युवा आंदोलन के एजेंडे पर आजादी और लोकतंत्र की रक्षा का सवाल प्रमुखता से बने रहना चाहिए।

20. दिल्ली गैंग रेप के खिलाफ हालिया उभार में युवतियों के साथ युवकों की भारी भागीदारी ने यौनिक हमले और पितृसत्तात्मक हिंसा के प्रतिरोध के सवाल को युवा आंदोलन के महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में शामिल करने की जरूरत को उजागर किया है। मामला महज कुछेक बलात्कारियों को कठोर दंड देने अथवा युवा पुरुषों में महिलाओं के सम्मान की रक्षा की शौर्य भावना को जागृत करने का नहीं है, बल्कि पितृसत्तात्मक सोच को पूरी तरह से खारिज करने का है। इसके लिए सामंती पितृसत्तात्मक व्यवस्था, जो आज भी व्यापक जनमानस और सामाजिक मूल्यों की मुख्य धारा पर हावी है, के विरुद्ध सच्चे विद्रोह और बड़े पैमाने पर सोच में बदलाव लाने की जरूरत है, जो हरेक क्षेत्र में महिलाओं को बराबर समझने में पुरुषों को सक्षम बनाए। सड़ी-गली पुरानी व्यवस्था और हमारे आकांक्षित मूल्यों तथा लोकतंत्र, आजादी एवं समानता के सपनों के बीच संघर्ष, उन्हीं तमाम मुद्दों पर सबसे धारदार ढंग से और प्रबलता के साथ उजागर होता है, जिन्हें अक्सर ढीले-ढाले तरीके से महिला प्रश्न कहा जाता है। छात्र-युवा आंदोलन को महिलाओं की आजादी और अधिकारों के सवाल को युवा एजेंडे का केंद्रीय हिस्सा समझना होगा, साहस के साथ प्रगतिशील लोकतांत्रिक मूल्यों को बुलंद करना होगा, प्रतिगामी विचारों और व्यवहार को खारिज करना होगा तथा निजी स्वतंत्रता के मामले में नैतिक पुलिसगिरी या जातिगत/ सांप्रदायिक धमकियों का प्रतिरोध करना होगा।

21. किसी शक्तिशाली छात्र-युवा आंदोलन को आवश्यक रूप से छात्र-युवाओं के बीच सशक्त जन-आधारित क्रांतिकारी संगठनों की जरूरत होती है। इन मामलों में, आइसा और इन्नौस दोनों ने हाल के वर्षों के दौरान एक हद तक स्थायित्व तथा संगठित विस्तार हासिल किया है, लेकिन यदि

हमें वर्तमान परिस्थिति की संभावनाओं के साथ सचमुच न्याय करना हो तो हमें और बड़े गतिरोध भंग करने की आवश्यकता है। आज हम देश भर में जो छात्र-युवा जागरण और दावेदारी देख रहे हैं, वह अपेक्षाकृत काफी बड़ी, सही मायनों में राष्ट्रीय परिघटना है। हमारा अपना अनुभव भी इस विशाल संभावना को उजागर करता है और साथ ही आइसा एवं इंसैस के संगठनात्मक नेटवर्क को छोटे शहरों-कस्बों तथा अर्ध-शहरी पंचायत क्षेत्रों तक फैला देने की जरूरत को रेखांकित करता है।

22. अंत में, आइए, हम कामरेड विनोद मिश्र के क्रांतिकारी आह्वान को याद करें जो आज के युवा आंदोलन के लिए खासकर प्रासंगिक है : “इतिहास के बड़े-बड़े सामाजिक-राजनीतिक मसले विधानसभाओं, संसदों की चहारदीवारियों के अंदर कभी हल नहीं हुआ करते। इतिहास में हमेशा महत्वपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक मसले सड़कों की लड़ाइयों के जरिये हल हुआ करते हैं और इन लड़ाइयों में संसदों और विधानसभाओं को कभी-कभी कहीं-कहीं बमबार्ड भी कर दिया जाता है। यही आंदोलन के बढ़ने का इतिहास है ... तमाम भ्रष्ट मंत्रियों और अधिकारियों (और यहां हम जोड़ सकते हैं, वे जो सामन्ती-सांप्रदायिक अत्याचार और महिलाओं के खिलाफ हिंसा के गुनहगार हैं) के लिए छात्र-युवा आंदोलन को आतंक बन जाना चाहिए, थरथराहट का पर्याय बन जाना चाहिए।”



# पंचायती राज संस्थाओं में हस्तक्षेप

1. 1993 के 73वें संशोधन और उसके बाद के 1996 के पंचायत एक्सटेंशन टु शिड्यूलड एरिया (पेसा) कानून के माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक हैसियत हासिल हुई। सरकारी विमर्श में, पंचायतें लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण या सत्ता के विकेन्द्रीकरण के मॉडल के रूप में महिमामण्डित की जाती हैं। हालांकि इन पंचायतों के लिए “सत्ता” का मतलब किसी किस्म की नीति बनाने या योजना तय करने के अधिकार नहीं है। पंचायतों के पास मूलतः राज्य और केंद्र सरकारों द्वारा निर्धारित योजनाओं और नीतियों के महज क्रियान्वयन के ही अधिकार होते हैं। इस सीमित खाके के अंदर, पंचायतों के अधिकार क्षेत्र में विविध बुनियादी सेवाओं से सम्बंधित कुल 29 विषय आते हैं। इसलिए इस प्रकार के सत्ता या लोकतन्त्र के विकेन्द्रीकरण को केवल दी गई जिम्मेदारियां निभाने और कोष के हस्तांतरण के रूप में ही समझा जाना चाहिए।

2. पेसा कानून के तहत ग्राम सभाओं को कथित रूप से अपेक्षाकृत ज्यादा अधिकार मिले हैं, जिनमें भूमि अधिग्रहण, पुनर्व्यवस्था और पुनर्वास के मामलों में उनसे सलाह लिये जाने का अधिकार भी शामिल है। इसके साथ-साथ उनके इलाके में आने वाले किसी भी खनन लाइसेंस की मंजूरी के लिये ग्राम सभा की संस्तुति अनिवार्य है। लेकिन पेसा के तहत हों या 73वें संशोधन से संचालित होने वाली पंचायती राज संस्थाओं के अधीन, वास्तविक जीवन में ग्राम सभाएं पंचायती राज की सबसे उपेक्षित और उल्लंघनीय पहलू हैं। खनिज-समृद्ध आदिवासी क्षेत्रों में चल रही भीषण खनन-लूट और देश

भर में कारपोरेट भूमि अधिग्रहण का अभियान, ग्रामसभाओं और पंचायती राज संस्थाओं को दिये गये अधिकारों का मखौल उड़ाये जाने की हकीकत को उजागर कर देते हैं। पंचायतों को और अधिक अधिकार का सर्वोपरि अर्थ होगा ग्राम सभा को और अधिक शक्तियां व प्रतिष्ठा, तथा ग्राम सभाओं के पास ग्रामीण गरीबों से सम्बंधित हर योजना के क्रियान्वयन में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप का अधिकार होना चाहिये।

3. यह दावा कि पंचायतें जमीनी स्तर पर प्रत्यक्ष या आम भागीदारी वाले लोकतन्त्र का मंच मुहैया कराती हैं, सिरे से झूठा है। फिर भी, यह जाहिर है कि इनसे चुने हुए प्रतिनिधियों की तादाद में भारी बढ़ोत्तरी हुई है। अनु. जाति/जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्गों को आरक्षण के अलावा महिलाओं के लिए 50% प्रतिशत सीटों के आरक्षण ने प्रतिनिधित्व के दायरे में भी साफ तौर पर विस्तार लाया है। इस प्रकार पंचायतों ने निश्चित तौर पर बड़ी तादाद में आम जनता को, खास तौर पर महिलाओं को, सार्वजनिक जीवन में प्रवेश की सहूलियत दी है और जनता की लोकतान्त्रिक आकांक्षाओं को जगाया है।

4. लेकिन पंचायतों के अंदर जनता की गोलबंदी और उनकी दावेदारी स्वतःस्फूर्त तरीके से नहीं हो सकती— इसे सचेतन ढंग से संगठित करना होगा और ठीक इसी काम में वर्ग-संघर्ष और कम्युनिस्ट पार्टी की महत्वपूर्ण भूमिका निहित है। दूसरी ओर, सत्ताधारी वर्ग पार्टी-विहीन पंचायतों के नाम पर तथा अफसरों, पंचायत पदाधिकारियों, बिचौलियों, ठेकेदारों व डीलरों के एक भ्रष्ट गठजोड़ के जरिये अपना वर्गीय नेटवर्क फैलाकर इसी गोलबंदी और दावेदारी की प्रक्रिया को उलझाते और उसमें बाधा डालते हैं। पंचायतें सत्ताधारी वर्गों के हाथों में अपनी घुसपैठ को गहरा करने तथा अपने नेटवर्क को शक्तिशाली बनाने का एक प्रमुख औजार हैं। यहां तक कि ग्राम सभाएं, जिन्हें कई लोग ग्राम-गणतंत्र का आदर्श बताते हैं, वास्तव में जाति, वर्ग व लैंगिक वर्चस्व और प्रभुत्व की शक्तियों एवं प्रक्रियाओं के मातहत चलती हैं। अतः पंचायतों के कोई गैर-वर्गीय चरित्र या उनके वर्गों से परे होने का भ्रम क्रांतिकारी आंदोलन के लिये आत्मघाती साबित होगा— पंचायत को जनता के हाथों प्रभुत्वशाली शक्तियों को पराजित करने हेतु जनता की जवाबी गोलबंदी के मंच में बदल देने के लिये क्रांतिकारी वर्ग लाइन को तहेदिल से व्यवहार में लागू करना होगा।

5. ग्रामीण राजनीतिक जीवन के केंद्र के बतौर पंचायतों के उद्भव ने नए तरह के अंतर्विरोधों और मुद्दों को सामने ला खड़ा किया है। आम जनता और पंचायतों को आम तौर पर नियंत्रित करने तथा अक्सर धनराशि का बड़ा हिस्सा हड़प जाने वाले गठजोड़ के बीच का अंतर्विरोध अधिकांश पंचायतों की



सर्वाधिक समान विशिष्टता है। बहुतेरे मामलों में जिला और ब्लॉक प्रशासन पंचायत के चुने गए प्रतिनिधियों को दरकिनार कर देते हैं या उनके प्रस्तावों को सिरे से खारिज कर देते हैं। प्रायः परिवारों के पुरुषों द्वारा महिला प्रतिनिधियों को मुखौटे या मुहरे की तरह इस्तेमाल किया जाता है, जबकि सामंती-कुलक लॉबी अपनी ताकत और प्रभाव का इस्तेमाल कर दलित और अति-पिछड़ी जातियों से आने वाले प्रतिनिधियों पर दबाव डालकर उन्हें अपने इशारों पर चलने को विवश करते हैं या फिर अपने साथ मिला लेने की कोशिश करते हैं। इसके अलावा, पंचायतों के जरिये लागू की जाने वाली हर योजना, चाहे उसे ईमानदारी से ही क्यों न लागू किया जाये, मांग और पूर्ति के भारी असंतुलन के कारण लोगों में अनिवार्यतः असंतोष पैदा करती है। अगर इन अन्तरविरोधों को जनसमुदाय पर भरोसा रखते हुये और क्रांतिकारी कम्युनिस्ट राजनीति पर मजबूत पकड़ बनाते हुए सही तरीके से समझा और हल नहीं किया जाता तो जनसंघर्षों के लम्बे दिनों के तपे-तपाये नेता भी पंचायत राजनीति की शासक वर्गीय योजना में भ्रष्ट होने और समाहित हो जाने के खतरे से बच नहीं पायेंगे।

6. वर्षों से बिहार और झारखंड में कोई पंचायत प्रणाली नहीं थी। बिहार में यह व्यवस्था 2001 में ही लागू हुई और झारखंड में तो पहला पंचायत चुनाव अभी 2011 में हुआ। बिहार की तुलना में झारखंड के पंचायत चुनाव में हमारा प्रदर्शन थोड़ा बेहतर रहा। बिहार में हम जिला परिषद की 15 से 20 सीटें, मुखिया की 100 से 125 सीटें और 100 से 150 पंचायत समिति सदस्यों की सीटें जीतते रहे हैं। झारखंड में हमने जिला परिषद की 20 सीटें, मुखिया की 120 सीटें, और पंचायत समिति की 144 सीटों पर जीत हासिल की। इसके बाद हम गढ़वा में जिला परिषद अध्यक्ष का पद जीत गये। कोडरमा में जिला परिषद अध्यक्ष के चुनाव में हम बराबर के मत पाकर टॉस में हार गए। गिरीडीह में जिला परिषद अध्यक्ष के चुनाव में हम तीसरे और उपाध्यक्ष के चुनाव में दूसरे स्थान पर रहे तथा वहां आठ सदस्यों के साथ मजबूत विपक्ष के बतौर कार्यरत हैं। झारखंड में हमने पांच ब्लॉकों में ब्लॉक-प्रमुख का पद जीता है। अन्य राज्यों में अब भी पंचायत चुनावों में हमारी सफलता का पैमाना काफी नीचा है।

7. पंचायत के क्षेत्र में हमारे सामने चुनाव जीतना जितनी बड़ी चुनौती है, उतनी ही बड़ी चुनौती यह भी है कि इन जीतों का इस्तेमाल आंदोलन के हित में कैसे किया जाये। हमारी पार्टी लाइन हमें पंचायतों को वर्ग-संघर्ष के मंच के रूप में, जनता की सेवा के औजार के बतौर, जनता के अधिकारों के लिए तथा वर्चस्वशाली सामंती-कुलक शक्तियों तथा बड़े पूंजीपतियों के नेतृत्व

वाले राज्य के खिलाफ प्रतिरोध के लिए हथियार के रूप में इस्तेमाल करने का स्पष्ट रूप से निर्देश देती है। पंचायतों में विभिन्न स्तरों पर निर्वाचित पार्टी सदस्यों को कड़ाई के साथ पार्टी लाइन लागू करना चाहिए और अपने आप को कमेटी के अनुशासन तथा जन-निगरानी के मातहत रखना चाहिए। बर्धमान कन्वेंशन (2006) में और उसके बाद हुए आठवें महाधिवेशन (2007) में शुरू किये गये गंभीर विचार-विमर्श और 28 जुलाई 2010 के आह्वान के मद्देनजर इस मामले में कुछ बेहतर दिखी है। लेकिन अब भी बहुत कुछ करना बाकी है।

8. पूरी पार्टी, खासकर राज्य और जिला कमेटियों को पंचायत स्तर के काम-काज पर और अधिक ध्यान देना होगा तथा पंचायत व प्रखंड स्तर की कमेटियों को पंचायत में अपने काम-काज के साथ गैर-पंचायती जन-कार्यवाहियों एवं पार्टी की समग्र राजनीतिक दिशा के साथ मिलाने में दिशा-निर्देश एवं मदद देनी होगी। हाल के दिनों में पंचायतों में हमारे प्रति. निधित्व एवं हस्तक्षेप को सफल राजनीतिक जन गोलबंदी के साथ मिलाने के कुछ उदाहरण सामने आए हैं। गढ़वा जिले में हमारी जिला परिषद अध्यक्ष का. सुषमा मेहता का माओवादियों के हथियारबंद दस्ते ने अपहरण कर लिया था। इसके बाद पुलिस ने माओवादियों का साथ देने का झूठा आरोप लगाते हुए हमारे एक मुखिया को गिरफ्तार कर लिया। सशक्त जन-प्रतिरोध के सामने माओवादियों को का. सुषमा एवं अन्य अपहृतों को छोड़ना पड़ा जबकि गिरफ्तार किए गए मुखिया साथी अभी भी जेल में हैं। कांग्रेस और भाजपा सहित शासक वर्ग की सभी पार्टियों ने मिल कर अविश्वास प्रस्ताव लाकर जिला समिति को उलट देने का षड्यंत्र किया लेकिन अब तक इस तरह की सभी कोशिशों को नाकामयाब कर दिया गया है। गिरीडीह जिले के बिरनी प्रखंड में निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों ने बिजली आपूर्ति के सवाल पर सशक्त जन-आंदोलन का नेतृत्व किया। भोजपुर जिले के संदेश प्रखंड की एक पंचायत में पंचायत-प्रतिनिधियों ने बीपीएल सूची से फर्जी नाम कटवाने के मुद्दे पर प्रखंड एवं जिला प्रशासन को सफलतापूर्वक पीछे धकेल दिया। पटना जिले की दो पंचायतों में हमारे मुखियाओं ने बंटाईदार किसानों के लिए भी डीजल सब्सिडी के वितरण की पेशकश की तथा सामंती प्रतिरोध एवं प्रशासनिक दबावों को सफलतापूर्वक नकार दिया। आखिरकार मजबूर होकर राज्य सरकार को अपनी नीति बदलनी पड़ी और सभी बंटाईदारों को सब्सिडी देने की नीति अपनानी पड़ी।

9. पंचायतों में हस्तक्षेप एवं उपयोग के सबसे बढ़िया अनुभव उन इलाकों से आए हैं जहां हमारा पार्टी संगठन मजबूत है और संघर्षों व लोकप्रिय आंदोलनों का जीवंत माहौल है। प्रमुख सवाल यह है कि पंचायतों के काम-काज को इलाके में वर्ग-संघर्ष के परिप्रेक्ष्य और प्राथमिकताओं से कैसे जोड़ा जाये। केवल पंचायती कामकाज को गैर-पंचायती संघर्षों के परिप्रेक्ष्य एवं प्राथमिकताओं के मातहत रख कर ही हम आंदोलन को मजबूत कर सकते हैं और इस बात की गारंटी कर सकते हैं कि पंचायतों का अपने हित में इस्तेमाल करने की सामंती-कुलक चालबाजी को जनता शिकस्त दे। जहां कहीं भी हम यह दिशा खो देते हैं, वहां पार्टी कमेटियों की भूमिका पंचायत-प्रबंधन की एजेंसी तक सीमित रह जाती है और पंचायती योजनाएं वर्ग-संघर्ष के एजेंडे को निष्प्रभावी करना शुरू कर देती हैं।

10. यह बात भी साफ रहनी चाहिए कि पंचायतों को संघर्षों के मंच के बतौर इस्तेमाल करने का कार्यभार सिर्फ सम्बन्धित पार्टी कमेटियों द्वारा ही नहीं हासिल किया जा सकता है। असली मामला है पंचायत को जनता की निरंतर दावेदारी और निगरानी के मातहत रखने का। पार्टी कमेटियों और जन संगठनों के नेटवर्क को आपस में तालमेल करके पंचायतों पर लगातार जन-दबाव बनाये रखना होगा। इस उद्देश्य के लिए ग्राम सभा खास तौर पर उपयोगी साबित हो सकती है। इसके अलावा, हमें अपने कामरेडों द्वारा संचालित पंचायतों तक ही सीमित न रहते हुए समग्र रूप से पंचायती व्यवस्था पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। संसद और विधानसभाओं से भिन्न, जनता पंचायतों के साथ अपेक्षाकृत अधिक घनिष्ठ और जीवंत रूप से जुड़ी होती है। जनता की मूल मांगों को जोरदार ढंग से सामने लाने तथा जन समस्याओं को हल करने के लिए दबाव बनाने के लिए हम बीच-बीच में पंचायतों को राज्य या जिला स्तरीय जन गोलबंदी का केंद्र बना सकते हैं, और यही हमें करना चाहिए।

11. हमें पंचायतों के लिए अधिक-से-अधिक अधिकारों को हासिल करने तथा विधायकों व सांसदों की तरह ही पंचायत प्रतिनिधियों के लिए भी समुचित भत्ते की प्रणाली पर जोर देना चाहिए। वास्तविकता यही है कि अभी तक सारे अधिकार राज्य सरकार और जिला प्रशासन के हाथों में सीमित हैं। संस्थाबद्ध भ्रष्टाचार की प्रणाली को चुनौती देने वाली पंचायतें सीधे प्रशासनिक प्रतिबंधों की मार झेलती हैं। हमें नौकरशाही द्वारा प्रतिशोधात्मक कार्रवाई और प्रशासनिक मनमानी के खिलाफ हमेशा जनता को खड़ा करना चाहिए। उच्चाधिकारियों के साथ ऐसे साहसिक राजनीतिक टकरावों के बलबूते ही पंचायतों में लोकतन्त्र की रक्षा की जा सकती है और उसे विस्तार दिया जा सकता है।



# शहरी कामकाज के सम्बंध में

1. भारत में शहरीकरण असमान ढंग से बढ़ रहा है. 2011 की जनगणना के अनुसार 31% से ज्यादा लोग अब शहरों में रहते हैं. इस शहरी आबादी का करीब एक-चौथाई हिस्सा नौ शहरों में केन्द्रित है जिन्हें महानगर कहा जाता है (प्रत्येक की आबादी 40 लाख से अधिक). लेकिन उन क्षेत्रों की तादाद में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है जिन्हें सेन्सस टाउन की संज्ञा दी गई है (जहां 5,000 से अधिक आबादी हो, 75% से अधिक पुरुष मजदूर गैर-कृषि कार्यों में लगे हों और जहां जनसंख्या का न्यूनतम घनत्व 400 प्रति वर्ग किमी हो), और जिन्हें अभी नगरपालिका की आधारभूत संरचना से युक्त वैधानिक शहर की मान्यता नहीं मिली है. 2001 से 2011 के बीच जहां वैधानिक शहरों की संख्या 3799 से थोड़ा बढ़कर 4041 हो गई, वहीं सेन्सस टाउनों की संख्या 1,362 से बढ़कर 3,894, यानी लगभग तिगुनी हो गई है.

2. तमिलनाडु अपनी 54.4% शहरी आबादी के साथ भारतीय राज्यों में सर्वाधिक शहरीकृत राज्य है, और उसके बाद हैं महाराष्ट्र (46.2%) और गुजरात (40.3%). लेकिन शहरी आबादी के कुल आकार के लिहाज से महाराष्ट्र पहले स्थान पर है, जिसके बाद उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु आते हैं. तमिलनाडु में शहरीकरण का विस्तार स्पष्टतः राज्य में मैन्युफैक्चरिंग क्षेत्र की गहनता से जुड़ा है – पूरे देश में यहां सबसे ज्यादा संख्या में कारखाने हैं और औद्योगिक मजदूरों का जत्था भी यहां सबसे बड़ा है.

3. महानगर धन-दौलत के संचयन और पूंजी संचालन के सबसे बड़े केन्द्र हैं, लेकिन उद्योग और सेवा, दोनों ही क्षेत्रों में, उत्पादन की प्रकृति बढ़ती पूंजी और तकनीक सघनता पर आधारित होने की वजह से इनमें रोजगार के अवसर दिन-ब-दिन घटते जा रहे हैं. वास्तव में बहुत सारे इलाकों और

शहरों पर, जो पहले अपने उद्योगों के लिये जाने जाते थे, अब बड़ी पूंजी और भूसम्पत्ति के कारोबारियों का कब्जा हो चुका है। लगभग सभी नये रोजगार ठेका-व्यवस्था में हैं और बहुआयामी कुशलता (मल्टी-स्किलिंग) की मांग करते हैं। बेहद कठिन और अपरिचित इस शहरी माहौल में गांवों और कस्बों से शहरों में आ रहे प्रवासी मेहनतकशों को आजीविका चलाने के लिए काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।

4. पिछले दो दशकों में शहरी विकास और प्रशासन में सुधार की दिशा में दो प्रमुख कदम उठाये गये। पहला था 74वां संविधान संशोधन, जिसके तहत शहरी निकायों में समरूपता लाई गई और नियमबद्धता लागू की गई। और दूसरा था 2005 में भारी तड़क-भड़क के साथ शुरू किया गया जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी पुनरुद्धार मिशन (जे.एन.एन.यू.आर.एम.). भारतीय शहरों को निवेशकों के अनुकूल बनाने के पूर्वघोषित उद्देश्य से चालू किये गये इस शहरी पुनरुद्धार मिशन ने शहरी भूमि हदबंदी कानून को समाप्त करने और निजी-सार्वजनिक साझेदारी को बढ़ावा देने जैसे सुधारों के साथ सरकार द्वारा खर्च किये जाने वाले फण्ड को जोड़कर वास्तव में 74वें संविधान संशोधन में लोकतंत्र के मुतल्लिक किये गये वादों पर कुठाराघात किया है। औपचारिक रूप से इस मिशन के दो अनुभाग थे, एक तो शहरों में आधारभूत ढांचे के विकास के लिये और दूसरा गरीबों को बुनियादी सेवाएं उपलब्ध कराने के लिये, लेकिन पहले अनुभाग को ही सारी धनराशि और प्राथमिकता दे दी गई जबकि दूसरा अनुभाग बुरी तरह उपेक्षित रह गया। और अब सरकार ने जे.एन.एन.यू.आर.एम.-2 नामक और भी महत्वाकांक्षी योजना तैयार की है, जिसका मकसद शहरी प्रशासन का हर पहलू से निजीकरण और व्यवसायीकरण करने के लिये और भी आक्रामक अभियान छेड़ना है।

5. भारत को झुग्गी-झोपड़ी मुक्त बनाने के बड़बोले लक्ष्य के साथ आवास एवं शहरी गरीबी उन्मूलन मंत्रालय द्वारा हाल में 'राजीव आवास योजना' शुरू की गई है। तमाम मौजूदा झुग्गी-झोपड़ियों को एक औपचारिक व्यवस्था के मातहत लाने के नाम पर सरकार ने वस्तुतः झुग्गी-झोपड़ी उजाड़ने का अभियान तेज कर दिया है, जबकि झुग्गी-झोपड़ियों की जमीन को सरकार द्वारा 'सस्ती आवास परियोजनाओं' के नाम पर बिल्डरों व डेवलपर्स के हवाले किया जा रहा है। ऐसी परियोजनाओं में बड़े पैमाने पर अनियमितता की रपटें भी आ रही हैं, सस्ते आवासों को गैर-हकदार लोगों के हवाले कर दिया जा रहा है जबकि झुग्गी-झोपड़ी वासियों को पुनर्वास की कोई व्यवस्था किये बिना उजाड़ा जा रहा है। अनुमान के मुताबिक भारत की शहरी आबादी का एक

चौथाई हिस्सा झुग्गी-झोपड़ियों में रहता है, और राज्य इस जमीन को खाली करा कर भू-माफियाओं को सौंप देने पर आमादा है।

6. जमीन की मिल्कियत और सम्बंधित मुद्दे नवउदारवादी सुधार के प्रमुख क्षेत्र हैं। शहरी जमीन का हदबंदी कानून पहले ही समाप्त किया जा चुका है और अब सरकार कानूनों में बदलाव करके 'समग्र शहरी भूमि सुधार' लागू करना चाहती है। जमीन की मिल्कियत और निबंधन की प्रक्रिया को पूरा करने के नाम पर शहरी गरीबों को उनकी आवासीय जमीनों से बेदखल करने का प्रयास किया जा रहा है। बेदखली के लिये सरकार द्वारा अपनाया गया दूसरा रास्ता है पानी और सफाई की बुनियादी सेवाओं की आपूर्ति के प्रावधान का भूमि के पट्टे और उसके कानूनी दर्जे से अलग कर देना। इससे झुग्गी-झोपड़ीवासी, शहरी गरीब और निम्न-आय वर्ग के लोग पानी, बिजली और सफाई से सम्बंधित दस्तावेजों के आधार पर अपने आवास की जमीन पर दावा करने के अधिकार से वंचित हो जायेंगे।

7. शहरी भारत में पूंजी का संकेन्द्रण बढ़ने के साथ ही मेहनतकशों की आबादी को शहर की सीमाओं व बाहरी इलाकों की ओर सुनियोजित तरीके से धकेला जा रहा है। इसीलिए शहरों में कम्युनिस्ट पार्टी के कामकाज में शहरी गरीबों की बेदखली के खिलाफ, और बेघरों को आवास के अधिकार के लिए संघर्ष का महत्व बढ़ता जा रहा है। पिछले दिनों कोलकाता के नोनाडांगा में, मुम्बई के खार-गोलीबार में और बंगलुरु के इजीपुरा में विस्थापन के खिलाफ हुए संघर्षों के अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि नगरपालिकायें और राज्य सरकारें रीयल एस्टेट के बादशाहों और बिल्डर-प्रमोटर माफिया लॉबी के इशारों पर काम कर रही हैं, इसीलिए तमाम विरोधों को दरकिनार कर बेदखली के अभियान जारी हैं। उजाड़े जाने के विरोध में जोरदार व अनवरत संघर्षों के चलते कुछ मामलों में बेदखली की कार्यवाही रोकनी पड़ी। पुदुच्चेरि में आवासहीनों को आश्रय दिलवाने के हमारे निरंतर संघर्ष के कारण वहां घर बनवाने और आवासहीन परिवारों को मिलने वाली सहायता राशि बढ़ाने के लिये सरकार बाध्य हुई है।

8. पूंजी के परिचालन का केन्द्र होने के अलावा शहरी इलाके जनमत-निर्माण- बड़े पैमाने पर सहमति का निर्माण- के केन्द्र भी हैं और साथ ही विरोध जाहिर करने और जन-प्रतिवादों के विस्फोट का केन्द्र भी हैं। इंटरनेट-आधारित सोशल मीडिया के उदय और टीवी चैनलों के प्रसार के साथ शहरी मध्यवर्ग को ज्यादा सशक्त ढंग से आवाज उठाने का मौका मिल गया है और दुनिया भर में हमने सशक्त और कल्पनाशील शहरी प्रतिवादों का

विस्फोट देखा है. अतः क्रांतिकारी कम्युनिस्टों के लिये शहरी इलाकों में और भी व्यवस्थित ढंग से और व्यापकता के साथ काम करना अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है.

9. परम्परागत रूप से कमजोर शहरी जनाधार कम्युनिस्ट पार्टियों के लिए रुकावट बनी रही है. यह बात हमारे लिये और भी ज्यादा सही है, और जो भी जन-समर्थन हमें हासिल है, वह मुख्यतः उन लोगों के बीच है जिन्हें प्रतिकूल शहरी माहौल में जिन्दा रहने के लिये लगातार संघर्ष करना पड़ता है. शहरी असंगठित मजदूरों के बीच हमारे बहुतेरे सदस्यों और समर्थकों को आवास और राशन कार्ड हासिल करने अथवा मतदाता पहचान-पत्र पाने के लिये लोहे के चने चबाने पड़ते हैं. जन-बल की यह सापेक्ष कमजोरी बहुत हद तक संरचनात्मक सीमाओं के चलते है जिस पर रातोंरात किसी जादुई तरीके से काबू नहीं पाया जा सकता. लेकिन इस कारण से राजनीतिक प्रतिक्रिया के गढ़ में काम कर रहे क्रांतिकारी कम्युनिस्टों को अपनी भविष्य-दृष्टि अथवा पहलकदमी को सीमित करने की इजाजत नहीं दी जा सकती. शहरी जनाधार को बढ़ाने के गंभीर प्रयास के साथ-साथ पार्टी को अवश्य ही शहरों में समयोचित एवं साहसिक जन-राजनीतिक पहलकदमियां लेते रहना होगा.

10. शहरों में हमारा कामकाज सामान्यतया असंगठित मजदूरों के बीच है, चाहे वे ट्रेड यूनियन में संगठित हों अथवा शहरी गरीबों के किसी अन्य छतरी संगठन में. उन्हें उनके कार्यस्थल पर तथा पेशेगत आधार पर संगठित करना महत्वपूर्ण है, मगर ऐसी ट्रेड यूनियनों को सचेत रूप से सामाजिक भूमिका भी निभानी होगी और शहरी जीवन में सामाजिक अस्तित्व के दौरान मजदूरों द्वारा झेले जा रहे मुद्दों को उठाना होगा. हाशिये पर खड़े शहरी गरीब हमारे शहरी जनाधार की रीढ़ हैं और हमें हर उपाय अपनाकर उनके अस्तित्व-रक्षा और सम्मान के लिये संघर्षों का नेतृत्व करना होगा. असंगठित मजदूरों और शहरी गरीबों के बीच कामकाज पर जोर कायम रखते हुए हमें वेतनभोगी शहरी मध्यवर्ग/मजदूर वर्ग (शिक्षक, वित्तीय संस्थाओं में कार्यरत कर्मचारीगण एवं अन्य) के साथ घनिष्ठ सम्बंध बनाने एवं उनके बीच पार्टी ढांचा गठित करने का हर संभव प्रयास करना होगा. ये शहरी मध्यवर्ग के संगठित हिस्से हैं जो अपने पेशे के क्षेत्र में अक्सर वामपंथी नेतृत्व वाली ट्रेड यूनियनों अथवा एसोसियेशनों में शामिल रहते हैं लेकिन शहरी राजनीति के समग्र संदर्भ में इनकी सामाजिक भूमिका और राजनैतिक मुखरता नगण्य है. हमें इस अभाव की पूर्ति करनी होगी. खुदरा व्यापार में कॉरपोरेटों के बढ़ते दखल के चलते छोटे व्यापारियों और दुकानदारों के हितों को बचाने के कार्यभार पर भी और



ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है।

11. कई शहरों और कस्बों में छात्रों के बीच हमारा कैम्पस-आधारित अथवा होस्टल आधारित कामकाज है, लेकिन युवाओं के बीच कामकाज अत्यंत सीमित है। यहां भी हमारे कामकाज में इलाके/सामाजिक दायरे का पहलू अगर बिल्कुल शून्य नहीं तो उपेक्षित जरूर है। छात्रों/युवाओं के बीच पार्टी के कामकाज में व्यापक जनवादी आंदोलनों के साथ एकरूप होने तथा उनमें शामिल होने, पार्टी के कामकाज के इलाकों में जनता के सवालों को उठाने, और यहां तक कि पार्टी कामकाज के नये इलाकों को विकसित करने के पहलू पर जोर देना होगा।

12. भारत के शहरों में नवयुवतियों, छात्राओं और कामकाजी महिलाओं की तादाद बढ़ रही है, लेकिन महिलाओं की बढ़ी हुई उपस्थिति, गतिशीलता और आपेक्षिक स्वतंत्रता को अक्सर पितृसत्तात्मक प्रतिघात का, जो पितृसत्ता के प्रतिक्रियावादी कायदों और पूर्वाग्रहों का आक्रामक वर्चस्व कायम करने की कोशिश है, सामना करना पड़ता है। जैसा कि हाल में हुए महिला आंदोलन के देशव्यापी फैलाव ने स्पष्ट तौर पर दिखलाया है, महिला आंदोलन अब जन-जागरण के एक अत्यंत शक्तिशाली पहलू के रूप में उभर चुका है। शहरी क्षेत्रों में पार्टी संगठन को महिला मोर्चे पर दृढ़संकल्प के साथ काम करना होगा और इसे केवल उपलब्ध महिला कामरेडों के जिम्मे नहीं छोड़ देना होगा। कामकाजी महिलाओं के सबसे असुरक्षित हिस्सों जैसे निर्माण मजदूरों, घरेलू कामगारों और सेवा क्षेत्र में तरह-तरह के कामों में लगी महिलाओं को संगठित करने के लिए विशेष प्रयास करने चाहिए।

13. शहरी इलाकों, खासकर महानगरों और प्रमुख शहरों में पार्टी संगठन को प्रगतिशील बुद्धिजीवियों, सांस्कृतिक एवं मीडिया कर्मियों, मानवाधिकार और जन-सरोकार के विभिन्न सवालों के प्रति सकारात्मक सोच रखने वाले वकीलों तथा विभिन्न आंदोलनों के कार्यकर्ताओं के साथ घनिष्ठ सम्बंध कायम करना होगा।

14. अधिकांश शहरों में दक्षिणपंथी ताकतों द्वारा फैलाये गये साम्प्रदायिक विद्वेष ने, जिसे राज्य-मशीनरी द्वारा आतंकवाद का मुकाबला करने के नाम पर अल्पसंख्यकों की धरपकड़ ने और गहरा कर दिया है, अल्पसंख्यक समुदाय को खास तौर पर असुरक्षित बना दिया है। उनका जबरन घेटीकरण (पृथक बस्तियों में रहना) आम बात है, क्योंकि अन्य कहीं रहने की जगह न मिलने के कारण उन्हें तथाकथित 'अल्पसंख्यक' बस्तियों में ही मकान खोजने होते हैं। साम्प्रदायिक राजनीति के खिलाफ और अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों

की रक्षा के लिये हमेशा सजग रहते हुए हमें साम्प्रदायिकता-विरोधी कार्यभार को अल्पसंख्यक समुदाय के सामने खड़े व्यापक जनवादी सरोकारों, आजीविका और सम्मान के साथ विकास में समान पैठ व अवसर से सम्बंधित मुद्दों के अभिन्न अंग के बतौर देखना होगा। बहुत सारे शहरों में प्रवासी मजदूरों और छात्रों को अनियंत्रित अंध-क्षेत्रवादी हिंसा का निशाना बनाया जा रहा है। हमें संकट में घिरे क्षेत्रीय/नृजातीय प्रवासियों को चुन-चुनकर निशाना बनाये जाने और उनके खिलाफ होने वाली हिंसा के प्रतिरोध में खड़ा होना होगा। इसी तरह हमें जातिवादी, साम्प्रदायिक और पितृसत्तात्मक हिंसा के विरुद्ध दलितों, अल्पसंख्यकों और महिलाओं के अधिकारों की रक्षा में भी आगे आना होगा।

15. बढ़ते निजीकरण और व्यवसायीकरण के चलते शहरी कामकाज में बुनियादी सुविधाओं के मुद्दों ने अत्यधिक महत्व ग्रहण कर लिया है। जबकि बिजली कटौती और पानी की कमी अधिकांश शहरों एवं कस्बों में आम बात है, वहीं इनकी दरों में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है और अक्सर बिल में देय राशि को काफी बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया जाता है। स्वास्थ्य-सेवा, शिक्षा, सार्वजनिक परिवहन और पेयजल का सवाल भी सभी गरीब और मध्यवर्गीय शहरवासियों के लिये उतना ही महत्वपूर्ण है। महंगी होती बुनियादी सुविधायें शहरी गरीबों की पहुंच से लगातार और दूर होती जा रही हैं। हम इन मुद्दों को तभी उठाते हैं जब कोई संकट विस्फोटक रूप धारण कर लेता है, जबकि शहरी जीवन के इन संवेदनशील मुद्दों पर अभियान और संघर्ष संचालित करने के लिये योजनाबद्ध और निरंतर प्रयासों पर जोर देना जरूरी है।

16. शहरी क्षेत्रों में पार्टी संगठनों को नगरपालिका के क्रियाकलापों और चुनावों में कारगर हस्तक्षेप करने के लिये और अधिक ध्यान देना होगा। शहरी क्षेत्रों में कमजोर जनाधार होने और इलाका-आधारित काम विकसित करने की दिशा में जोर कम रहने के कारण नगरपालिका चुनावों में हमारी भागीदारी कमजोर रहती है। सिर्फ बिहार में पटना और आरा के नगर निगम चुनावों में अपने निरंतर कामकाज व पार्टी की समग्र छवि के चलते कुछ जीतें दर्ज करा सके हैं। काम के सभी प्रमुख शहरी केन्द्रों में नगर निगम चुनावों में बेहतर परिणाम हासिल करने के लिए पार्टी को अपने शहरी कार्य के स्तर व प्रभावक्षेत्र को हर हाल में ऊंचा उठाना होगा।

17. रेजीडेंट वेलफेयर एसोसियेशन (आर.डब्ल्यू.ए.) शहरी सुधारों की एक प्रमुख विशेषता बनकर उभरे हैं। हालांकि इनका इस्तेमाल 'भागीदारी' की आड़ में होता है, मगर इसे अन्य सामाजिक समूहों, जैसे झुग्गी-झोपड़ी वासियों और रेहड़ी-खोखा-पटरी लगाने वालों, के खिलाफ खड़ा कर दिया

जाता है. रेहड़ी-खोखा-पटरी वालों के लिए बनाई गई राष्ट्रीय वेण्डर नीति में आर.डब्लू.ए. से सम्बंधित प्रावधान वस्तुतः इन विक्रेताओं को उजाड़ने के काम आ रहे हैं, वह भी लोकतांत्रिक भागीदारी के नाम पर. आम तौर पर गरीब और झुग्गी-झोपड़ी वासी संरचनात्मक रूप से बहिष्कृत होते हैं और प्रायः उनके साथ आर.डब्लू.ए., जिनमें प्रायः अधिक सुविधा-सम्पन्न मध्यवर्ग हावी रहता है, का टकराव रहता है. भ्रष्टाचार के खिलाफ तथा स्थानीय सुविधाओं के लिये संघर्ष में आर.डब्लू.ए. के एक मंच के बतौर उभरने की संभावना को दिमाग में रखते हुए जहां कहीं संभव हो, हमें आर.डब्लू.ए. में जनवादी हस्तक्षेप का प्रयास करते रहना होगा और नीतिगत रूप से व कार्यपद्धति में, दोनों ही स्तरों पर, आर.डब्लू.ए. में गरीब-विरोधी प्रवृत्तियों का प्रतिरोध करना होगा.

18. अंत में, शहरी क्षेत्रों में पार्टी संगठनों को शहरी काम के लिये व्यापक भविष्य दृष्टि के साथ एक समग्र योजना बनानी होगी और उसे अमली जामा पहनाने के लिये एकीकृत दृष्टिकोण अपनाना होगा. वर्तमान में शहरों में जारी ढांचागत पुनर्गठन और शासक वर्ग द्वारा भारतीय शहरों को निवेशकों के अनुकूल कुलीन इंकलेव में बदल देने के अभियान के मुकाबले शहरों में अपना दावा ठोकने के संघर्ष ने नई तीव्रता ग्रहण कर ली है और हमें नागरिक अधिकारों, सम्मान और लोकतंत्र के रणघोष के साथ इस लड़ाई को जी-जान से लड़ना होगा.



# पर्यावरण संरक्षण एवं जन-केन्द्रित विकास

1. जीविका का विनाश, भूमि एवं संसाधनों का हड़पा जाना, जमीन से बेदखली, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के लिये खतरा पैदा करने वाला प्रदूषण, और पर्यावरण का विनाश, इन तमाम चीजों को शासक वर्गों द्वारा 'विकास' के नाम पर जायज ठहराया जा रहा है. साथ ही, जनता को शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, तथा अन्य किस्मों के सामाजिक कल्याण के बुनियादी अधिकारों से वंचित किया जा रहा है, जिन्हें किसी भी देश में विकास के मूलभूत मापदंड होना चाहिये.

2. विकास के लिये जनता का एजेंडा कारपोरेट कम्पनियों द्वारा संचालित विकास को उलटने के लिये कड़े कदम उठाये जाने, और संसाधनों, परिसम्पत्तियों एवं सेवाओं के बेलगाम निजीकरण का प्रतिकार करने, तथा जनता के अपने हितों एवं स्थानीय, भागीदारीमूलक जनवादी निर्णय पद्धति को विकास के केन्द्र में रखने की मांग करता है. विकास के बुनियादी उसूल की परिभाषा बदलनी होगी ; उसका बुनियादी उसूल होगा संसाधनों पर जनता के नियंत्रण की गारंटी करना तथा इस किस्म के संसाधनों से प्राप्त राजस्व के इस्तेमाल में सामाजिक कल्याण को प्राथमिकता देना.

3. पिछले चंद दशकों में पारिस्थितिक-तंत्रों एवं जैविक पर्यावरणों की बढ़ती क्षति, और मानव जीवन को टिकाये रखने वाले संसाधनों तक लोगों की पहुँच के घटते जाने ने पर्यावरण की दुर्दशा और पारिस्थितिक असंतुलन के बारे में गंभीर चिंताओं को सामने ला दिया है. पारिस्थितिक-तंत्रों और पर्यावरण को पहुँचे नुकसान का परिणाम मुख्यतः समाज के वंचित एवं कमजोर तबकों-

मछुआरों, जीविका के लिये जंगल और सामुदायिक चारागाहों पर निर्भर समुदायों, हमारे शहरों में चारों ओर धब्बों की तरह छाई बेशुमार झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले शहरी गरीबों, छोटे किसानों एवं भूमिहीन खेतमजदूरों इत्यादि— को ही झेलना पड़ता है. और फिर, इन वंचित समुदायों में भी अक्सर महिलाओं को ही क्षति का कहीं ज्यादा बड़ा बोझ अपने कंधों पर उठाना पड़ता है.

4. ढेर सारी पर्यावरण सम्बंधी समस्याओं — भूमंडलीय तापवृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) से लेकर औद्योगिक प्रदूषण और जलस्रोतों एवं वन संसाधनों का क्षय होने तक— के लिये शासक वर्गों द्वारा पेश किये गये 'समाधान' अनिवार्यतः उसी बाजार एवं मुनाफा-आधारित रूपरेखा के दायरे में कैद रहते हैं, जिसने खुद इन समस्याओं को बढ़ाया है. इसके अलावा, अक्सर ये 'समाधान' सबसे गरीब और एकदम हाशिये पर खड़े लोगों को— जो आम तौर पर पर्यावरण की दुर्दशा और पारिस्थितिक विध्वंस के शिकार होते हैं— पर्यावरण के 'संरक्षण' का पूरा बोझ उठाने के लिये मजबूर करते हैं. यह क्रांतिकारी आंदोलन की जिम्मेवारी है कि वह इस रूपरेखा का विरोध करे और उसे खारिज करे और एक सम्पूर्ण भिन्न रूपरेखा, जिसकी जड़ें समाज के सबसे कमजोर और वंचित तबकों के हितों में निहित हों, के आधार पर पर्यावरण एवं पारिस्थितिक-तंत्र सम्बंधी चिंताओं को जोरदार ढंग से उठाये. हमें विकास की एक ऐसी दूरदृष्टि की जोरदार पैरवी करनी होगी जो जनता की आजीविका के स्रोतों का विनाश नहीं करती ; हमें विकास का ऐसा मॉडल चाहिये जो सुरक्षित हो और ग्रामीण एवं शहरी गरीबों की वास्तविक आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हो.

## पर्यावरण सम्बंधी चिंताएं एवं कृषि

5. कृषि की चिरस्थायी अवहेलना के अलावा, रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का अतिशय और बिना विचारे उपयोग, जिसे इन रसायनों की निर्माता कम्पनियों के हित में तथा कृषि संकट को सामयिक रूप से टालने के लिये राज्य द्वारा बढ़ावा दिया जा रहा है, सदियों से अपने उपजाऊपन के लिये विख्यात हमारे देश में मिट्टी की उर्वरता को दीर्घकालीन रूप से क्षतिग्रस्त कर रहा है. इसके अलावा, अरक्षित रूप से रसायनों के प्रभाव में पड़ने और खतरनाक और जोखिमभरे रसायनों का धीमे-धीमे रिस-रिस कर मिट्टी और जल में प्रवेश के परिणामस्वरूप ऐसे इलाकों में, जहां भारी मात्रा में कीटनाशकों और उर्वरकों के इस्तेमाल का लम्बा इतिहास रहा है, किसानों के बीच कैंसर समेत तमाम किस्म के रोगों में भयावह बढ़ोत्तरी हो रही है. ऐसे अंचलों में कैंसर के मामलों का असाधारण रूप से भारी तादाद में देखा जाना— जो

राष्ट्रीय औसत से अधिक है— 'विकास' इस अंधेरे पक्ष की जोरदार पुष्टि है।

6. रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के इस्तेमाल के मुद्दे ने अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा नग्न रूप से इस्तेमाल में लाये जा रहे दुहरे मानदंडों को उजागर किया है। सर्वप्रथम, एक ओर इन शक्तियों ने भारत जैसे देशों को खेती के लिये रासायनिकों का सघन उपयोग करने वाला मॉडल अपनाने पर विवश कर दिया है, ताकि उनके अपने देशों के कृषि-व्यवसायों के हितों की रक्षा की जा सके। दूसरी ओर, अब वे भारतीय उत्पादों को इस आधार पर खारिज कर रहे हैं कि वे 'अस्वास्थ्यकर' हैं और उनके उत्पादन में हद से ज्यादा मात्रा में कीटनाशकों का इस्तेमाल किया गया है। इसके अलावा अति-धनाढ्य बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अमरीका और ब्रिटेन की अपेक्षा भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों में खाद्य-पदार्थ के लिये सुरक्षा के बिल्कुल भिन्न मापदंड अपनाती हैं। एक ही कम्पनी द्वारा बेचे जाने वाले एक ही सामान में कीटनाशकों की मात्रा भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न होती है, जो दुहरे मानदंडों का उत्कृष्ट उदाहरण है और तीसरी दुनिया के देशों की जनता के स्वास्थ्य और उनकी सुरक्षा की कोई फिक्र न रहने का परिचायक है। अतः इस मांग को उठाना जरूरी है कि भारत सरकार रसायनों के इस्तेमाल पर वैज्ञानिक रूप से नियंत्रण कायम करे और वैकल्पिक कृषि तकनीकों तथा जैविक कीटनाशकों व उर्वरकों के उपयोग को बढ़ावा दे।

7. कृषि की ढांचागत समस्याओं का सामना करने की बजाय भारतीय शासक वर्ग 'अनुवांशिक रूप से रूपांतरित जैविकों' (जैसे जीएम बीजों) को बढ़ावा देने में लगा हुआ है। कपास की खेती में बीटी कॉटन का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल हो रहा है और इसके नतीजे काफी खौफनाक हैं। बहुतेरे मामलों में शुरूआत में उच्च फलन के बाद बहुत जल्दी ठहराव आ गया और विज्ञापनों में बताए गए फायदों के विपरीत वास्तविकता में दीर्घकालिक तौर पर कीटनाशकों के इस्तेमाल में बढ़ोत्तरी हुई। इस सबके अलावा, बीटी कपास की खेती के इलाकों में किसानों द्वारा भारी संख्या में खुदकुशी की जारी घटनाएं दिखलाती हैं कि कम-से-कम वर्तमान भारतीय स्थितियों में जीएम बीज खेती और खेतिहरों के लिए अभिशाप हैं।

8. इसके अलावा, जीएम जैविकों के इस्तेमाल से जुड़ी कई गंभीर पारिस्थितिक-सम्बंधी चिंताएं भी हैं, मसलन जैव-विविधता और मिश्रित फसल उगाने की कृषि-संस्कृति पर इनका बुरा असर। जीएम जैविकों के इस्तेमाल से खर-पतवार के साथ-साथ आस-पास के दूसरे पौधे भी मर जाते हैं। हमारे देश में 'खर-पतवार' एकदम 'अनुपयोगी' पौधे नहीं माने जाते। बहुतेरे इलाकों में

लोग उनके पत्तों का सब्जियों या पशुओं के चारे की तरह इस्तेमाल करते हैं। ठीक इसी तरह जीएम जैविकों से वे औषधीय पौधे भी नष्ट हो जाते हैं जो स्वास्थ्य और पशु चिकित्सा के लिहाज से मूल्यवान होते हैं। इन सब कारणों से हमें नकदी और खाद्यान्न, दोनों तरह की फसलों में इन घातक जैविकों के इस्तेमाल पर तत्काल प्रतिबंध/स्थगन की मांग उठानी चाहिए।

9. नॉर्थ अमेरिकन फ्री ट्रेड एग्रीमेण्ट (नाफ्टा) का उदाहरण जिसने मेक्सिको में पर्यावरण और किसानों को बरबाद कर दिया, हमें साम्राज्यवादी ताकतों के संरक्षण में कारपोरेट कृषि-व्यापार (एग्रीबिजनेस) के दुष्प्रभावों के प्रति सावधान करता है। अंतर्राष्ट्रीय कृषि-व्यापार के स्वार्थ में थोपे गए कारपोरेट-निर्देशित इन तकनीकी 'नुस्खों' का विरोध करते हुए, हम कृषि विकास की ऐसी वैकल्पिक प्रविधियों को ग्रहण किये जाने की मांग करते हैं, जो भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल हों, और जिनको राज्य की योजना के तहत राज्य द्वारा वित्तपोषित और प्रोत्साहित किया जाता हो। देशी बीजों, खाद एवं अन्य लागत सामग्रियों के समुचित इस्तेमाल के साथ-साथ, हजारों सालों से भारतीय किसानों के संचित किसानी ज्ञान तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दलाल नहीं बने ऐसे देशभक्त कृषि वैज्ञानिकों की सलाह के बल पर इस रास्ते पर आगे बढ़ना बिल्कुल सम्भव है। हमें जन आंदोलनों के जरिये सरकार पर दबाव डालना होगा और उसे मजबूर करना होगा कि वह इस तरह के षड्यंत्रों को रोके और सर्वांगीण कृषि-सुधार के आधार पर कृषि विकास की कृषक-पक्षधर एवं जन-पक्षधर रणनीति का रास्ता पकड़े।

## औद्योगिक प्रदूषण और पर्यावरणीय चिंताएं

10. औद्योगिक प्रदूषण— सामान्यतः गैसों और प्रदूषण-पदार्थों के उत्सर्जन से होने वाला वायु प्रदूषण, खतरनाक रसायनों के उत्सर्जन से होने वाला जलस्रोतों का प्रदूषण और उद्योगों द्वारा ढेर लगाया गया ठोस औद्योगिक कचरा— एक और गंभीर पर्यावरणीय चिंता है। यह समस्या भ्रष्टाचार में आकंट डूबे तथाकथित 'प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड', जो कि बड़े व्यापारिक हितों की रक्षा से पूर्णतः प्रतिबद्ध है, के कारण, और गंभीर होती जा रही है। खास तौर पर चिंताजनक बातें ये हैं : (क) प्रदूषण पैदा करने वाली कंपनियों में कार्यरत मजदूरों के स्वास्थ्य और उनकी सुरक्षा की चिंता ; (ख) औद्योगिक कचरा, जिसे पर्याप्त प्रशोधन के बिना नदियों और झीलों में बहा दिया जाता है, जिससे वह पानी स्थानीय समुदायों के इस्तेमाल करने लायक नहीं बचा है। पानी के प्रदूषित स्रोतों की समस्या उद्योगों द्वारा भारी मात्रा में ताजे पानी का उपयोग किये जाने के कारण



और बढ़ गई है, पर सरकार हमेशा की तरह बेखबर बैठी है।

11. भोपाल गैस त्रासदी का मामला हमें याद दिलाता रहता है कि किस तरह बहुराष्ट्रीय कारपोरेशन जवाबदेही से बचने के लिए कैसे-कैसे छल-कपट और धूर्तता से काम लेते हैं और कैसे भारतीय शासक वर्ग और यहां तक कि अदालतें भी ऐसे आपराधिक कारपोरेशनों के साथ सांठ-गांठ कर सजा से और हुई तबाही एवं मौतों का हर्जाना देने से उन्हें बचाती हैं।

12. उद्योगों को पर्यावरणीय मानकों का पालन करने के लिए बाध्य करने और उल्लंघन करने पर उन्हें दंडित किये जाने की मांग के साथ ही हमें बेहतर तथा कड़े कानूनों की भी मांग करनी चाहिये। इसके अलावा, औद्योगिक प्रदूषण से निपटने के लिए हमें 'पुराने ढर्रे' के नुस्खों से परे जाने और यह मांग करने की जरूरत है कि ये उद्योग पर्यावरण के ज्यादा अनुकूल और कम-से-कम प्रदूषण पैदा करने वाली तकनीकों और प्रक्रियाओं को अपनायें।

## परमाणु ऊर्जा से सम्बंधित मसले

13. यूपीए सरकार के भारत-अमेरिका परमाणु समझौते पर हस्ताक्षर करने और उसके तुरंत बाद परमाणु बिजलीघर चालू करने के अभियान के मद्देनजर यह खासतौर पर बेहद जरूरी हो गया है कि ऊर्जा उत्पादन के तथाकथित 'शांतिपूर्ण' उद्देश्य के लिए भी परमाणु ऊर्जा के प्रयोग का विरोध किया जाय। सरकार ने 4,120 मेगावाट बिजली की मौजूदा परमाणु क्षमता को भारी मात्रा में बढ़ाकर सन् 2032 तक 63,000 मेगावाट बिजली पैदा करने की योजना बनाई है। जापान की फूकुशिमा जैसी त्रासदी के बाद भी इस योजना में कोई तब्दीली नहीं आई, जबकि फूकुशिमा को दुनिया का सर्वाधिक 'सुरक्षित' और तकनीकी रूप से सर्वोत्तम प्लांट कहा जाता था। फूकुशिमा त्रासदी को देखते हुए यह चिंता बढ़ गई है कि वैसी दुर्घटना अगर हमारे जैसे पिछड़े देश में घटी तो अंजाम क्या होगा!

14. दुर्घटनाओं के अलावा, परमाणु विखंडन से पैदा होने वाली ऊर्जा के उत्पादन की पूरी प्रक्रिया में लोग लगातार खतरनाक विकिरण से प्रभावित होते हैं। इसके अलावा, दुनिया भर में परमाणु ऊर्जा संस्थानों को लेकर अकसरहा किए जाने वाले झूठे दावों के विपरीत, परमाणु ऊर्जा परियोजना ऊर्जा के दूसरे स्रोतों की तुलना में ज्यादा महंगी पड़ती है – न तो इनका नवीनीकरण संभव होता है और न ही यह ऊर्जा 'सदाबहार' है। यूरेनियम की वर्तमान आपूर्ति ज्यादा-से-ज्यादा 80 साल तक चलेगी, इसके बाद प्लांट चलाने के परमाणु ईंधन बचेगा ही नहीं। और खनन से लेकर कचरे के प्रबंधन तक,

परमाणु ऊर्जा के उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के मामले में यह कोयले और गैस पर निर्भर बिजली उत्पादन से कम नुकसानदेह नहीं है। उदाहरण के लिये जैतापुर का प्रस्तावित प्लांट (यूरोपीय प्रेशराइज्ड रिएक्टर तकनीक के साथ) की लागत 19.5 करोड़ रुपये प्रति मेगावाट बिजली है, जबकि कोयले पर निर्भर प्लांट की लागत 5 करोड़ रुपये प्रति मेगावाट बिजली है। इसके अलावा, सौर एवं वायु ऊर्जा की गिरती कीमत के विपरीत परमाणु ऊर्जा की कीमत बढ़ती जा रही है।

15. ठीक इन्हीं कारणों के चलते दुनिया भर में परमाणु ऊर्जा पर निर्भरता कम होती जा रही है। दुनिया भर में कार्यरत परमाणु रिएक्टरों, परमाणु बिजलीघरों की संख्या सन् 2020 तक लगभग 22% और 2030 तक लगभग 29% कम हो जाएगी। उदाहरण के लिए जर्मनी ने घोषणा की है कि वह 2022 तक अपने सभी परमाणु बिजलीघरों को बंद कर देगा और परमाणु ऊर्जा मुक्त हो जाएगा। लेकिन भारत के सत्ताधारी अभिजन, जनता के हितों और राष्ट्रीय संप्रभुता का सम्पूर्णतः उल्लंघन करते हुए अमेरिकी साम्राज्यवाद को खुश करने के लिए बेशर्मा से उल्टी दिशा में चल रहे हैं।

16. इसलिए हमें निश्चित तौर पर अमेरिका-प्रायोजित परमाणु अभियान का पर्दाफाश और प्रतिरोध करना होगा और जैतापुर, कुडन्कुलम, हरीपुर, फतेहाबाद एवं अन्य जगहों पर चल रहे परमाणु ऊर्जा विरोधी आंदोलनों को समर्थन और मजबूती देने के लिए तथ्य और तर्क के बल पर अभियान चलाना होगा। नीतीश सरकार के साथ मिलकर यूपीए सरकार ने बिहार के कटिहार और नवादा जिले में हाल ही में दो नए प्लांट प्रस्तावित किए हैं, और यहां भी इन परियोजनाओं का जोरदार विरोध करना होगा।

## पर्यावरण और स्वास्थ्य : एस्बेस्टस, जहरीले कचरे के ढेर

17. 13 मई, 2011 को उच्चतम न्यायालय ने पूरे देश में एंडोसल्फान के नुकसानदेह असर का हवाला देते हुए इसके इस्तेमाल, बिक्री, उत्पादन और निर्यात पर तब तक के लिए प्रतिबंध लगा दिया है, जब तक इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च और कृषि आयुक्त के मातहत बनाई गई संयुक्त समिति व्यापक तौर पर प्रयोग में आने वाले इस घातक कीटनाशक के नुकसानदेह प्रभावों के संदर्भ में अपनी रिपोर्ट न प्रस्तुत कर दे। यह फैसला दो दशक तक एंडोसल्फान के खिलाफ अनवरत चले आंदोलन की भारी जीत है। इस आंदोलन ने सरकारी संस्थाओं और मुनाफाखोर कारपोरेशनों के नापाक

गठजोड़ का पर्दाफाश किया है। इस आंदोलन को तब तक जारी रखना होगा जब तक एंडोसल्फान देश भर में प्रतिबंधित न हो जाये।

18. इसी तरह एसबेस्टस जैसे दूसरे संभावित घातक पदार्थों के खिल. फ भी संघर्ष तेज करने की जरूरत है। सभी तरह के एसबेस्टस उन तमाम मजदूरों के लिये सम्पूर्णतः अनिवार्य खतरा पैदा करते हैं, जो उनके खनन में, और उससे जुड़े कार्यों में नियुक्त रहते हैं, और इसके अलावा वे हर उस आदमी के लिये खतरनाक हैं जो लम्बे समय तक एस्बेस्टस के इर्द-गिर्द रहते हैं. मगर पूरी तथ्यपरक जानकारी के बावजूद एंडोसल्फान की त्रासद कहानी को दुहराते हुए केंद्र और राज्य सरकारें एसबेस्टस उद्योग को बढ़ावा देने पर तुली हुई हैं। एसबेस्टस दुनिया भर के 55 देशों में प्रतिबंधित हो चुका है, पर हमारे देश में एसबेस्टस के नए कारखाने प्रस्तावित किये जा रहे हैं। बिहार में भोजपुर, प. चंपारण, मुजफ्फरपुर, वैशाली और मधुबनी में नए प्लांट प्रस्तावित हैं और बिहार सरकार ने 2012 में इन कारखानों के निर्माण में मदद के लिये 'बिहार कृषि भूमि का गैर-कृषि उपयोग के लिए रूपांतरण कानून' पास भी कर दिया है। एसबेस्टस का विकल्प मौजूद होने के बावजूद उसको बढ़ावा दिया जाना जारी है। इसके अलावा, केंद्र सरकार ने रूस और कनाडा जैसे देशों को इस जहरीले पदार्थ के भारी मात्रा में भंडार का भारत में ढेर लगाने की इजाजत दे दी है।

19. अलंग (गुजरात) और कुछ अन्य बन्दरगाहों के पास पुराने जहाजों को तोड़ने का उद्योग भी चिंता का एक और विषय है. इन बंदरगाहों में खतरनाक पदार्थों का आयात किया जाता है और उन्हें मजदूरों, जो ज्यादातर बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा और झारखंड से आये प्रवासी होते हैं, को ढोना पड़ता है— यह काम अक्सर कानूनी प्रावधानों के नग्न उल्लंघन को छिपाने के लिए गोपनीय और अपारदर्शी तरीके से किया जाता है. हम ऐसी तमाम जनविरोधी नीतियों और कार्यवाहियों का विरोध करते हैं और इनके खिलाफ चलाये जाने वाले विभिन्न आंदोलनों का पूर्ण समर्थन करते हैं.

**वन्य-जीव संरक्षण और मनुष्यों और पशुओं के बीच टकराव**

20. देश के विभिन्न हिस्सों में हमें मनुष्यों और पशुओं के बीच टकराव दिखाई पड़ते रहते हैं— चाहे वह केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश में प्रतिदिन हाथियों से ग्रामीणों का टकराव हो, या उत्तराखण्ड, सुन्दरबन, राजस्थान या पश्चिमी चम्पारन में बाघों से, या फिर वन्य-जीव संरक्षण के नाम पर राज्य द्वारा इन इलाकों से लोगों का विस्थापन हो. ये मुद्दे हमारे सामने

एक ओर मनुष्यों की जीवन-रक्षा की गारंटी करने और दूसरी ओर उतने ही महत्वपूर्ण प्राकृतिक पारिस्थितिक-तंत्रों एवं उन पर निर्भर विभिन्न प्रजातियों की रक्षा करने, की आवश्यकताओं के बीच संतुलन कायम करने की चुनौती पेश करते हैं। शासक वर्ग द्वारा इस असंतुलन के भुक्तभोगियों को ही वास्तविक 'समस्या' के रूप में पेश करने की कोशिशों के चलते यह चुनौती और भी कठिन हो जाती है। इसी कोशिश में शासक वर्ग द्वारा जंगलों में सदियों से बाघों के साथ रहते आये आदिवासियों को, जिनमें बाघों को मारकर उनकी खाल अपने कमरों में सजावट के लिए टांगने की कोई इच्छा ही नहीं होती, अचानक ही 'घुसपैठिया', पशुओं का अवैध शिकार करने वाला और वन्य-जीव संरक्षण परियोजनाओं का सबसे बड़ा दुश्मन करार दिया जाता है।

21. मनुष्यों और पशुओं के बीच टकराव के बारे में अपना रुख तय करने में दो बड़े मुद्दों पर ध्यान देने की जरूरत है। पहला, यदि न्यूनतम जंगल क्षेत्र को बनाये रखने के लिए कदम नहीं उठाये गये और विभिन्न प्रजातियों के जीवन की न्यूनतम जरूरतों पर ध्यान नहीं दिया गया, तो यह संघर्ष बढ़ेगा। दूसरा, जानवरों का अवैध शिकार स्थानीय लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिये नहीं होता, बल्कि यह शिकार उस बाजार के लिये हो रहा है जिसके ग्राहक दूरस्थ शहरों व अन्य देशों के उच्च वर्गीय लोग हैं। ज्यादातर उद्योगों, भूसम्पत्ति कारोबारियों (रीयल एस्टेट), मध्य वर्ग और उच्च वर्ग के हित में ही जंगलक्षेत्र नष्ट किये जाते हैं, जबकि स्वयं जंगल के सबसे निकट रहने वाले ग्रामीणों को जानवरों के हमलों का शिकार होना पड़ता है। यही लोग हैं, जो इस संघर्ष को सबसे बेहतर समझते हैं, और पारिस्थितिक-तंत्र के संतुलन को नष्ट करके इस संघर्ष को बढ़ाने में उनकी कोई रुचि होती भी नहीं। इसलिए वे ही इसका सबसे बेहतर समाधान ढूँढ सकते हैं। अतः यह जरूरी है कि संरक्षण की प्रक्रिया में उन स्थानीय समुदायों एवं ग्रामीणों को अवश्य शामिल किया जाय जो जानवरों के नजदीक रह रहे हैं।

22. पर्यटन उद्योग पारिस्थितिक तंत्र (ईकोसिस्टम) पर संभालने की क्षमता से अधिक बोझ डाल रहा है, अनियंत्रित निर्माण जानवरों के लिए जंगल में स्वतंत्र विचरण में बाधाये बन गये हैं, यहां तक कि दूरस्थ जंगलों के आदिवासियों के शोषण में भी पर्यटन उद्योग शामिल है। अनियंत्रित पर्यटन उद्योग को बेरोकटोक चलने देने की जगह भारत सरकार को एक 'नो-कार्बन फुटप्रिण्ट्स' पर आधारित पर्यटन नीति बनानी चाहिए और इस पर कड़ाई से अमल करना चाहिए,

## जलवायु परिवर्तन और जल संकट के बारे में

23. ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के कारण भूमंडलीय तापवृद्धि (ग्लोबल वार्मिंग) और जलवायु परिवर्तन हो रहे हैं, जो इसी बीच खतरनाक हद तक जा पहुंचे हैं। वातावरण में कार्बन डाइ-ऑक्साइड की मात्रा काफी पहले ही वैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित सुरक्षित सीमा से ऊपर जा चुकी है और लगातार बढ़ रही है। इस मुद्दे को समग्रता में विश्व स्तर पर हल करने की जरूरत है, लेकिन अमेरिका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी ताकतें अपने अहंकार और धौंस-धमकी की नीति से किसी भी संभावित हल में लगातार बाधा डालती रही हैं।

24. दुनिया भर के गरीब व विकासशील देशों की हमेशा यही मान्यता रही है कि अलग-अलग देशों को जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने के मामले में अलग-अलग जवाबदेही लेनी चाहिए, जिसका आधार होगा (क) ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में अलग-अलग देशों की ऐतिहासिक भूमिका अथवा उनके द्वारा उत्सर्जन की संचित मात्रा, और (ख) वर्तमान में प्रति व्यक्ति उत्सर्जन। ऐतिहासिक रूप से अत्यंत औद्योगीकृत व अत्यधिक धनी 'विकसित' देश ही ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार रहे हैं। उदाहरणार्थ, अमेरिका पूरी दुनिया में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के 25% हिस्से के लिये जिम्मेवार है। अमेरिका में प्रति व्यक्ति उत्सर्जन की मात्रा भी पूरी दुनिया में सबसे ज्यादा है : वहां कार्बन डाइ ऑक्साइड के उत्सर्जन की मात्रा, भारत में 0.9 टन प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष, चीन में 2.3 टन प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष के मुकाबले 20.1 टन प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष है। इसलिए ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने में अमेरिका की जिम्मेदारी सर्वाधिक होनी चाहिए।

25. मगर इसके विपरीत, अमेरिका हमेशा से यही मांग करता आया है कि भारत और चीन जैसे बड़ी आबादी वाले विकासशील अर्थतंत्रों को भी कानूनी रूप से बाध्यकारी उत्सर्जन कटौती को मानना चाहिये, भले ही उनके प्रति व्यक्ति उत्सर्जन की अमेरिका से कोई तुलना ही न की जा सकती हो। भारत और चीन ने अमेरिकी धौंस-धमकी के आगे आत्मसमर्पण कर दिया है: डरबन जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (नवंबर-दिसंबर, 2011) में हुए संदिग्ध समझौते के अनुसार भूमंडलीय जलवायु परिवर्तन के बारे में अब कोई भी बातचीत बराबरी के आधार पर नहीं होगी। हम इसे खारिज करते हैं और भारत सरकार से मांग करते हैं कि वह जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिये एक न्यायपूर्ण और प्रभावकारी नीति के निर्माण के लिए संघर्ष जारी रखे। खास तौर पर इस बात की गारंटी करना बहुत जरूरी है कि जलवायु परिवर्तन का मुद्दा बड़े कारपोरेशनों (उदाहरण के लिए प्रदूषण नियंत्रण की तकनीक व यंत्रों के

आपूर्तिकर्ताओं) के लिए मुनाफा कमाने का एक और जरिया न बन जाये ; साथ ही इस बात की भी गारंटी करनी होगी कि गरीब व विकासशील देशों को ग्रीन-हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए वैश्विक कोष से पर्याप्त राशि मिले और उस राशि का समुचित उपयोग हो।

26. जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण-क्षय नियंत्रित करने के नाम पर विश्व बैंक, यू.एन.एफ.पी.ए., डीएफ.आई.डी. आदि साम्राज्यवादी संस्थानों द्वारा लायी गई जनसंख्या नियंत्रण की नीतियों का हमें जरूर विरोध करना चाहिए जो भारत में जबरन बंध्याकरण करने और हानिकारक गर्भनिरोधकों को लाने और उनका परीक्षण करने के रूप में लागू हो रही हैं। कारपोरेटों द्वारा किये गये पर्यावरण विनाश की जिम्मेदारी जनसंख्या नियंत्रण के नाम पर उन गरीबों पर डाली जा रही है जो खुद ही इस विनाश से सबसे ज्यादा पीड़ित हैं। औरत के संतानोत्पत्ति के अधिकारों के नाम पर ऐसी उत्पीड़क नीतियों का हमें विरोध करना चाहिए और इनके स्थान पर समग्र स्वास्थ्य सेवाओं के आधारभूत ढांचे के तहत सुरक्षित गर्भनिरोधकों की मुफ्त आपूर्ति के साथ महिलाओं के लिए बच्चा चाहने या न चाहने का चुनाव खुद करने के अधिकार की मांग करनी चाहिए।

27. जलवायु परिवर्तन की मार गरीब ही झेलते हैं- चाहे वह अनियमित मानसून के चलते हो, बर्फ पिघलने से होने वाले जल-प्रवाह एवं मानसून पर निर्भर नदियों में पानी की कमी हो, या फिर जलवायु परिवर्तन से जुड़ी हुई मलेरिया और डेंगू जैसी बीमारियां हों।

28. हमारे देश की आबादी दुनिया की कुल आबादी की बीस फीसदी है, जबकि हमारे पास दुनिया का सिर्फ 4 प्रतिशत ताजा पानी है। तेजी से होने वाले शहरीकरण, हरित क्रांति आने के बाद से कृषि में पानी के अधिक इस्तेमाल, लापरवाह उद्योगपतियों एवं अन्य तमाम किस्मों के कारणों से वह पानी भी तेजी से घटता जा रहा है। इसी समय शहरी इलाके पानी की सतत कमी से त्रस्त हैं तो नदियों के पानी के बारे में अंतरराज्यीय विवाद (जैसे कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच कावेरी के पानी को लेकर विवाद) बार-बार उभरने वाली घटनाएं बन गई हैं। जहां जमीन के नीचे जलवाही स्तरों में जल की मात्रा लगातार घटती जा रही है, वहीं जमीन की सतह पर मौजूद पानी अत्यंत प्रदूषित है। उद्योगों द्वारा संहिताओं में लिखे तमाम नियम-कानूनों की लगातार धज्जियां उड़ाई जाती हैं या फिर उनका अस्तित्व बस कागज पर है, क्योंकि नाली के पानी के प्रशोधन की उचित व्यवस्था नहीं है। इन तमाम बातों को दुरुस्त व व्यवस्थित करने और नदियों, झीलों, नहरों व अन्य जल स्रोतों की नियमित सफाई के साथ-साथ जल संरक्षण एवं उपयोग के बारे में

एक नया वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है।

आजादी के बाद से ही भारत की सरकारों ने दुर्भाग्यवश बड़े बांधों पर भारी निर्भरता वाली जल प्रबंधन की औपनिवेशिक काल से चली आ रही नीतियों को अपनाया है। अपने खौफनाक परिणामों के इतिहास और इससे प्रभावित होने वाले आम लोगों, पर्यावरण कार्यकर्ताओं, इंजीनियरों व तकनीकी विशेषज्ञों के विरोध के बावजूद जल प्रबंधन की यही रणनीति सालों से चली आ रही है। वृहदाकार जल विद्युत परियोजनाओं के कारण बड़े पैमाने पर विस्थापन से लेकर स्थानीय पर्यावरण की भारी तबाही तक के दुष्परिणामों को हम जानते हैं और इसके खिलाफ देश में बहुत से जनसंघर्ष पिछले दिनों हुए हैं और कई आज भी जारी हैं। उदाहरण के लिए नर्मदा बचाओ आन्दोलन बड़े बांधों की राजनीति के खिलाफ अब तक का सबसे लम्बे समय तक चलने वाला प्रसिद्ध संघर्ष रहा है। उत्तराखण्ड में हमारे साथियों ने पर्यावरण के लिए हानिकारक, जनता को विस्थापित करने वाली और प्राकृतिक आपदाओं का खतरा बढ़ाने वाली जल विद्युत परियोजनाओं के खिलाफ उल्लेखनीय संघर्ष किये हैं।

भूगर्भ के जलवाही स्तरों में पानी की मात्रा बढ़ाने और गांवों में कृषि व घरेलू इस्तेमाल के लिए पर्याप्त पानी मुहैया करवाने की गारंटी के लिए बड़ी परियोजनाओं की जगह छोटे-छोटे और कम शोर-शराबे वाले प्रयासों पर जोर देना आज वक्त की जरूरत है। इसके लिए (क) परंपरागत ग्रामीण तालाबों का पुनर्निर्माण, (ख) मानसून के दौरान बरसात का पानी इकट्ठा करने के लिए छोटे-छोटे चेक डैमों का निर्माण, (ग) पानी की वास्तविक जरूरतों को पूरा करने के लिए जंगल के कटाव के इलाकों में फिर से वृक्षारोपण, आदि कदम अधिक कारगर साबित हुए हैं। शहरी इलाकों में बरसात के पानी के संरक्षण की परियोजनाओं को अवश्य ही अमल में लाया जाना चाहिए।

28. भारत में आज जल के निजीकरण की कोशिशें जोर पकड़ रही हैं, जैसा कि दुनिया के कई देशों में पहले ही किया जा चुका है। जल संसाधनों पर सबके समान अधिकार के लिए संघर्ष करने के साथ-साथ हमें निजीकरण की कोशिशों का हर हाल में विरोध करना होगा।

**तटीय पर्यावरण और आजीविका की रक्षा के लिए**

29. विकास के शासक वर्गीय प्रतिमान ने भारत के 5700 किमी लम्बे तटीय क्षेत्र और करीब 35 लाख की मत्स्यजीवी आबादी को खतरों में डाल दिया है। रसायन उद्योगों के संकुल, तापीय बिजली घरों, बंदरगाहों और मछली पकड़ने के उद्देश्य से बनाये गये बंदरगाहों ने पूरी तटरेखा को लील

लिया है। तटीय क्षेत्रों व झीलों में मशीनीकृत मत्स्य उद्योग को बढ़ावा देने के कारण गरीब मछुआरों की आजीविका छिन रही है। मछुआरों की आबादी का करीब 61 प्रतिशत गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहा है। जहां 65 प्रतिशत से अधिक मछुआरे छोटे स्तर पर अथवा परम्परागत तरीकों से मछली पकड़ने के काम में लगे हैं, वहां कुल पकड़ी गई मछलियों का 70 प्रतिशत उन मशीनीकृत नावों के जरिये आता है जो मात्र 34 प्रतिशत मछुआरों को रोजगार दे रही हैं। पिछले दिनों चिल्का झील में घेरी माफिया के खिलाफ (भाकपा(माले) के नेतृत्व में) और जैतापुर में परमाणु बिजली योजना के विरुद्ध हुए संघर्ष उल्लेखनीय रहे हैं।

तट और समुद्री संसाधनों को कारपोरेट लूट से बचाने के लिए हमें एक नीति बनाने की मांग करनी चाहिए और विकास के नाम में लायी जा रही जनविरोधी परियोजनाओं का विरोध एवं मछुआरों के अधिकारों व आजीविका की रक्षा करनी चाहिए।

## जंगल पर अधिकार और विकास

30. आज भारत में भूमि अधिग्रहण व खनन परियोजनाओं के खिलाफ और जंगल पर अधिकार के लिए होने वाले संघर्ष जुझारू जन आंदोलन का एक प्रमुख क्षेत्र बनकर उभरे हैं। इन्होंने देशी और विदेशी बड़ी पूंजी के हित में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए राजसत्ता के इस्तेमाल के सामने कड़ी चुनौती पेश कर दी है।

31. मेहनतकशों की बेदखली के जरिये पूंजी के संचय के खिलाफ चल रहे इन संघर्षों का समर्थन करते हुए हम मांग करते हैं कि सभी प्राकृतिक संसाधनों को लोकतांत्रिक, सामूहिक नियंत्रण में लाया जाये। इसलिए हम जंगल, जमीन व खनिज से जुड़े तमाम कानूनों की बुनियाद के लिए कुछ मूलभूत सिद्धांत प्रस्तावित कर रहे हैं :

(क) जंगल अधिकार कानून के अंतर्गत सभी सामुदायिक व व्यक्तिगत अधिकारों को मान्यता मिले और उनका सम्मान किया जाये। राजस्व-भूमि पर भी व्यक्तिगत व सामुदायिक अधिकारों को मान्यता देने के लिये इसी किस्म की प्रक्रिया अपनायी जाय।

(ख) पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम (पेसा) और वन अधिकार कानून (एफआरए) के तहत ग्राम सभाओं को हासिल अधिकारों का अवश्य ही सम्मान किया जाये। वन अधिकार अधिनियम का उल्लंघन करके और ग्राम सभा की अनुमति के बिना ही जंगल की जमीन का दूसरे कामों में



इस्तेमाल तत्काल समाप्त किया जाये. जिन राज्य सरकारों ने, जैसे राजस्थान और आंध्र प्रदेश की सरकारों ने, पेसा के विपरीत कानून पारित किये हैं, उन्हें इन कानूनों को वापस लेने के लिए बाध्य किया जाये. सभी आदिवासी-बहुल क्षेत्रों को पांचवीं या छठी अनुसूची में शामिल किया जाये.

32. आंध्र प्रदेश में अनुसूचित जनजातियों के बीच काम करने वाले समूह 'समता' ने राज्य सरकार द्वारा आदिवासी-बहुल क्षेत्रों में आदिवासियों की जमीन को निजी खनन कंपनियों के हवाले किये जाने के खिलाफ मुकदमा दायर किया. सुप्रीम कोर्ट में दायर इस याचिका पर जुलाई 1997 में तीन जजों की बेंच ने एक ऐतिहासिक फैसला दिया. इसे आमतौर पर समता जजमेंट के नाम से जाना जाता है. इस निर्णय ने अनुसूचित क्षेत्रों में राज्य सरकारों द्वारा दिये गये खनन के सभी पट्टों को निरस्त कर दिया और सभी खनन गतिविधियों पर रोक लगाने का निर्देश दिया. निर्णय में कहा गया कि ऐसे क्षेत्रों में केवल राज्य खनिज विकास निगम या आदिवासियों की सहकारी समितियां ही खनन गतिविधियां चला सकती हैं और उन्हें भी वन संरक्षण कानून और पर्यावरण संरक्षा कानून के अंतर्गत अपनी गतिविधियां संचालित करनी होंगी. इसने 73वें संविधान संशोधन और पेसा को मान्यता दी, जिसके अंतर्गत ग्रामसभाओं को सामुदायिक संसाधनों के संरक्षण और सुरक्षा करने के मामले में अधिकृत माना गया है, और आदिवासियों के स्वशासन के अधिकार को दोहराया. हाशिये के लोगों के जीवन व जीविका की सुरक्षा से सम्बंधित तमाम उपयुक्त मामलों में इस निर्णय का अक्षरशः पालन किया जाना चाहिए.

(क) जमीन के इस्तेमाल की योजनाओं को स्थानीय चुनी हुई संस्थाओं को शामिल कर लोकतांत्रिक तरीके से बनाना चाहिए.

(ख) जिन परियोजनाओं के लिए जमीन का अधिग्रहण या प्राकृतिक संसाधनों का दोहन जरूरी हो, उन सभी के लिए प्रभावित गांवों की ग्रामसभाओं से पूरी जानकारी पर आधारित सहमति ली जानी चाहिए, खासकर आदिवासी व जंगल के इलाकों में तो ऐसा जरूर किया जाना चाहिए.

(ग) हदबंदी से फाजिल जमीन के उपयोग में बदलाव को 'अधिग्रहण' माना जाये और इसके लिए समुदाय की सहमति और पुनर्वास का प्रावधान किया जाये.

(घ) राज्य द्वारा दी जाने वाली सब्सिडी व परियोजनाएं स्थानीय लोगों को दी जायें ताकि वे परियोजनाओं को सहकारी समितियों के जरिये चलायें या प्राकृतिक संसाधनों का सामूहिक इस्तेमाल करें. संसाधनों के दोहन में लगी कॉरपोरेट कंपनियों को दी जाने वाली सब्सिडी और टैक्स में छूटें समाप्त की

जायें। उद्योगों व खनन के लिए आवश्यक जमीन व अन्य संसाधनों के जबरन अधिग्रहण की बजाए उन्हें स्थानीय लोगों से लोकतांत्रिक राय-मशविरा के आधार पर उनसे पट्टे (लीज) में लिया जा सकता है।

(च) सेज कानून 2005 और मौजूदा जमीन अधिग्रहण बिल समेत तमाम कॉरपोरेट-पक्षधर कानूनों का तीखा विरोध करना होगा। जहां समुदायों की सहमति से बड़ी परियोजनाएं चल रही हैं, वहां 1996 की भूरिया कमेटी की सिफारिशों के अनुरूप समुदायों को उनके मालिकाने की शेयर इक्विटी दी जानी चाहिए। साथ ही आदिवासी क्षेत्रों में जमीन के बदले जमीन और भूमिहीनों को जमीन देकर पूर्ण पुनर्वास की व्यवस्था का प्रावधान होना चाहिए, इसके अलावा, आजादी से लेकर अब तक हुए कुल विस्थापन, पुनर्वास व संसाधनों के दोहन व अधिग्रहण के बारे में सरकार द्वारा श्वेतपत्र जारी करना चाहिए। जब तक यह पूरा न हो जाए तब तक बड़ी परियोजनाओं के लिए अधिग्रहण पर रोक लगाई जाये।

33. उदारीकरण के पिछले दो दशकों में प्राकृतिक संसाधनों के निजीकरण का अनवरत अभियान चला है – जिसका उदाहरण खान एवं खनिज पदार्थ (विकास व नियंत्रण) कानून (एमएमडीआर ऐक्ट) में सिलसिलेवार ढंग से किये गये परिवर्तन हैं, जिनके अनुसार खनिज पदार्थों पर निजी/कॉरपोरेट नियंत्रण के दरवाजे खोल दिये गये हैं, और इसी तरह जंगल, नदी व जमीन को भी कॉरपोरेट इस्तेमाल के लिये खोल देने की कोशिशें जारी हैं। कॉरपोरेट कम्पनियों द्वारा जमीन व संसाधनों की लूट के चलते विस्थापन और बेदखली भी तेज हुई है, जो नियमतः तीखे राज्य दमन के जरिये हो रहा है। इसने बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार को जन्म दिया है और देश की खाद्य सुरक्षा व जंगल क्षेत्र के लिए खतरा पैदा किया है। इन नीतियों का एकमात्र फायदा पहुंचा है बड़े कॉरपोरेशनों को, जिन्होंने बहुमूल्य राष्ट्रीय संपदा का निजी दोहन और निर्यात करके अंधाधुंध मुनाफा कमाया है, और दूसरे नम्बर पर भ्रष्ट नेताओं को, जिन्होंने इस लूट को मुमकिन बनाया है। खनिज संपदा के राष्ट्रीयकरण समेत समस्त प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण को अविलम्ब प्राथमिकता देना होगा।

हिमालय व अन्य क्षेत्रों में विश्व बैंक के कहने पर 'ग्रीन-बॉण्ड/ग्रीन बोनस' जैसी विभिन्न योजनाओं में बड़े-बड़े जंगलों को कारपोरेट नियंत्रण में दिया जा रहा है, और यह सब हो रहा है 'संरक्षण(सस्टेनेबिलिटी)' के छलावे में। ऐसी योजनाओं के पीछे लगे निहित कारपोरेट स्वार्थों का भण्डाफोड़ करते हुए उनका जोरदार विरोध जरूरी है। इतना ही नहीं, तथाकथित 'विकास' योजनाओं के लिए जंगलों से भारी पैमाने पर पेड़ों की कटाई के दुष्प्रभावों

को जानबूझ कर कम दिखा कर और 'क्षतिपूरक वृक्षारोपण' जैसी धारारें जोड़ कर योजनाओं को पास कर देने की धोखाधड़ी वाली चालों का विरोध करना चाहिए. यह बात सभी जानते हैं कि ऐसे वृक्षारोपण ज्यादातर केवल कागजों में ही होते हैं और वर्षों से निर्मित हो रहे बहुमूल्य घने मिश्रित जंगलों व पर्यावरण को पहुंचे नुकसान की क्षतिपूर्ति लेशमात्र भी नहीं होती है.

## जन कल्याण व जन अधिकार

34. एक ओर, मुठ्ठी-भर भारतीय व विदेशी कारपोरेट कम्पनियों द्वारा अपने मुनाफे के लिए प्राकृतिक संसाधनों, जो राष्ट्रीय संपत्ति है, को लूटा जा रहा है, जिससे सरकारी खजाने में कोई इजाफा नहीं बल्कि भारी नुकसान हो रहा है. दूसरी तरफ, सरकार अपने पास 'धन की कमी' का बहाना बनाकर निजीकरण कर रही है, जिससे बुनियादी स्वास्थ्य सेवायें, शिक्षा, आवास और सम्मानपूर्ण जीवन के लिये अन्य आवश्यक चीजें गरीबों की पहुंच से बाहर चली जाती हैं.

35. कुपोषण और जच्चा-बच्चा की मृत्युदर जैसे सामाजिक सूचकांकों के मामले में भारत का अत्यंत खराब रिकार्ड चरमराते सार्वजनिक स्वास्थ्य ढांचे के विनाशकारी असर के संकेतक हैं. विशाल ग्रामीण भारत, और उससे कहीं ज्यादा जंगली इलाके बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं से भी वंचित हैं. जिन बीमारियों को रोका जा सकता है, वे भी हर साल महामारी की तरह फैलती हैं और हजारों लोगों की जान ले लेती हैं. स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण के चलते गरीबों के लिए सरकारी अस्पताल तक की सुविधायें दूर हो गयी हैं और उन्हें अत्यंत महंगे निजी अस्पतालों के रहमोकरम पर छोड़ दिया गया है. रोग-निदान व मेडिकल जांच का लगातार निजीकरण होता जा रहा है, वे और महंगे होते जा रहे हैं. बीमारियों की रोकथाम (जैसे संक्रामक बीमारियों व महामारियों की रोकथाम) को पूर्णतः और आपराधिक रूप से अनदेखा किया जा रहा है. गरीबी रेखा के नीचे के लोगों का मुफ्त इलाज करने का वादा करके कॉरपोरेट अस्पताल कौडियों के मोल सार्वजनिक भूमि हासिल कर लेते हैं, लेकिन बाद में वे गरीबों का इलाज करने से मना कर देते हैं और उनका अपमान करते हैं.

36. हमें सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा पर जनता के अधिकार के लिए जन संघर्ष छेड़ने का पूरा प्रयास करना चाहिए. हमें हर गांव में चिकित्सा उपकरणों से सुसज्जित स्वास्थ्य केन्द्र, महामारियों की रोकथाम के लिए अभियान, हर राज्य में एम्स की तरह के पूर्ण सुसज्जित सार्वजनिक अस्पताल, जिनमें

निदान और शोध की व्यवस्था हो, और सभी भिन्न-क्षमता सम्पन्न लोगों को सम्मानजनक जीवन की गारंटी के लिए समुचित उपांगों, शिक्षा एवं अन्य सहायक चीजें मुहैया कराने की मांग करनी चाहिए. निःशक्तजनों के हित में सभी सार्वजनिक स्थानों व सुविधा-केन्द्रों को व्हीलचेयर जाने लायक व सुविधाजनक बनाना चाहिए.

37. शिक्षा का अधिकार भी लोकप्रिय संघर्षों का मुद्दा होना चाहिए. निजी स्कूल और उच्च शिक्षा, बेतहाशा फीस, अमीरों के लिए महंगे व अच्छे और गरीबों के लिए खराब स्कूल, ये सब भारतीय शिक्षा व्यवस्था के लक्षण बन गये हैं. मनमानी फीसों और शोषणकारी स्कूल व कॉलेज प्रबंधन के खिलाफ अभिभावकों व छात्रों के संघर्ष अब दिखाई पड़ने लगे हैं. हमें पड़ोस में ही उपलब्ध समतामूलक समान स्कूल प्रणाली के जरिये समान शिक्षा हासिल करने के अधिकार और सार्वजनिक राशि से चलने वाले स्कूलों व उच्च शिक्षा संस्थानों पर सार्वभौमिक अधिकार के लिए लोकप्रिय संघर्ष चलाना चाहिए.

38. सार्वभौमिक खाद्य सुरक्षा और आवास को भी विकास व सम्मान के लिये जनता की कार्यसूची का अनिवार्य हिस्सा बनाना होगा. संसाधनों की रक्षा और जनता के अधिकारों, सम्मान व स्वायत्तता को बुलंद करने के लिए देश को नीतियों में एक जन पक्षधर बदलाव की आज की जरूरत है और हमारी पार्टी इस दिशा में सतत काम करती रहेगी.

# जनता की प्रगतिशील संस्कृति और आधुनिक मीडिया

1. आज भारत में नवउदारवादी नीतियों के दौर में हम 'संस्कृति' के पूर्णरूपेण व्यापारीकरण तथा मनुष्य के अलगाव के साक्षी हैं, जिसके तहत मनुष्य को सामाजिक व रचनात्मक प्राणी के बतौर नहीं बल्कि अलग-थलग पड़े 'उपभोक्ता' के रूप में पेश किया जा रहा है। इसी क्रम में हम 'भारतीय संस्कृति' के नाम पर सामंती, जातिवादी और पितृसत्तात्मक मूल्यों के तीव्र व खुल्लमखुल्ला प्रोत्साहन के भी साक्षी हैं। मनुष्य में चरम अलगाव पैदा करने वाला पूंजीवादी बाजार और आधुनिक कारपोरेशन ही उस अलगाव से 'आध्यात्मिक' या 'सांस्कृतिक' सांत्वना के नाम पर सर्वाधिक प्रतिगामी सामाजिक मूल्यों को बढ़ावा देते हैं।

2. राजनीतिक सत्ता अनिवार्यतः ऐसी संस्कृति का प्रचार करती है जो हर हाल में उसकी वैधता बनाये रखे— और ऐसी संस्कृति तुलनात्मक रूप से एकरस और स्थिर होती है। जबकि इसके विपरीत जन-संस्कृति अपने व्यापकतम अर्थों में सदैव समय के साथ बदलते गतिशील विचारों और मूल्यों से अपनी जीवनी-शक्ति ग्रहण करती है। 'सत्ता' संस्कृति को समायोजित करने और पालतू बनाने की कोशिश करती है, जबकि 'संस्कृति' जीवन के नये मूल्यों का सतत सृजन करती रहती है, और इन अर्थों में 'सत्ता' से सदैव स्वायत्त रहने की कोशिश करती है। इसलिए जनता की 'संस्कृति' के समक्ष पहली और सबसे महत्वपूर्ण चुनौती राजसत्ता से अपनी स्वायत्तता बनाये रखने की होती है। शासक वर्गों (जिसमें राजसत्ता और कॉर्पोरेट पूंजी दोनों शामिल हैं) की यह लगातार कोशिश होती है कि पुरस्कारों, रियायतों व अन्य प्रलोभनों के

जरिये सांस्कृतिक रूपों और व्यक्तियों को समायोजित, हस्तगत और अनुकूलित कर लिया जाये. यह कार्यतः प्रलोभन और दंड की द्वैत नीति है, जो एक हद तक रचनात्मकता को मान्यता देती है और उसे पुरस्कृत करती है, और साथ ही अगर कोई रचनात्मक रूप राजसत्ता के समक्ष कारगर चुनौती बन जायें तो वह रचनात्मक स्वतंत्रता को विनियमित करने, नियंत्रित करने और उनका दमन करने का अधिकार सुरक्षित रखती है.

3. 'भारतीय संस्कृति' के रूप में बाजार और राजसत्ता द्वारा जिन मूल्यों को बढ़ावा दिया जाता है, वे नियमतः धार्मिक बहुसंख्यकवादी, जातिवादी और पितृसत्तात्मक होते हैं— यह धार्मिक, एथनिक, राष्ट्रीय, भाषाई और विचारधारात्मक अल्पसंख्यकों तथा महिलाओं व दलितों के बहिष्करण की संस्कृति है. शासक वर्गों द्वारा जिस 'सामान्य बोध' को बढ़ावा दिया जाता है, उसमें यही भेदभावपूर्ण और बहिष्करण वाली संस्कृति 'भारतीय संस्कृति' के रूप में प्रचारित होती है, यही वास्तव में सांप्रदायिक फासीवादी ताकतों के लिए अत्यंत उर्वर भूमि का काम करता है. ये ताकतें महिलाओं, दलितों और अल्पसंख्यकों पर हिंसा को जायज ठहराने के लिए स्वयं को 'भारतीय संस्कृति' का स्वयंभू रक्षक घोषित कर देती हैं.

4. अभिव्यक्ति की आजादी और विरोध की आवाजों पर सांप्रदायिक फासीवादियों और राज्य, दोनों के हमले अक्सर आपसी सांठगांठ और सहयोग से होते हैं. आमतौर पर ये हमले 'भारतीय संस्कृति' की रक्षा और 'देशभक्ति' के नाम पर किये जाते हैं. युवा कार्टूनिस्ट असीम त्रिवेदी और डॉ. बिनायक सेन व सीमा आजाद जैसे कार्यकर्ताओं पर थोपे गये राजद्रोह के मुकदमे, कबीर कला मंच के कार्यकर्ताओं को 'माओवादी' कह कर उनकी गिरफ्तारी, फर्जी आरोपों में जीतन मरांडी जैसे संस्कृतिकर्मी को सजा, बंगलुरु की गैलरी में युवा चित्रकार अनिरुद्ध साईनाथ कृष्णमणि की पेंटिंग प्रदर्शनी पर सेंसरशिप, कुछेक कैपसों में कश्मीर पर बनी डॉक्यूमेंटरी फिल्मों (जैसे संजय काक की जश्ने-आजादी) को दिखाने पर हिंदुत्ववादी गुंडों के आदेश से रोक, बाल ठाकरे की मौत पर शिव सैनिकों द्वारा थोपे गए बंद की फेसबुक पर आलोचना करने वाली दो लड़कियों की गिरफ्तारी आदि हाल फिलहाल में हमारे समय के 'सांस्कृतिक आतंकवाद' की घटनाएं हैं. हम हिंदू-मुस्लिम रूढ़िवादिता की आपसी होड़ भी देख सकते हैं : इधर एम.एफ. हुसैन जैसे बड़े चित्रकार को भारत छोड़कर कतर की नागरिकता लेने के लिए विवश किया जाता है, तो उधर तस्तीमा नसरीन को भारत में रहने की अवधि नहीं बढ़ाने दिया जाता. हाल ही में कश्मीर में नवयुवतियों को अपने रॉक बैंड का

प्रदर्शन 'इस्लामी' संस्कृति के नाम पर मिलने वाली मौत की धमकियों के चलते बंद कर देना पड़ा।

5. अभिव्यक्ति की आजादी और असहमति के अधिकार के खिलाफ ऐसी संसरशिप और सांस्कृतिक आतंकवाद के इसी दौर में क्रांतिकारी सांस्कृतिक आंदोलन के 'प्रतिरोध की संस्कृति' के नारे को व्यापक समर्थन और स्वीकार्यता मिली है। जनता का सांस्कृतिक आंदोलन और खासकर हिन्दी-उर्दू क्षेत्र में जन संस्कृति मंच अभिव्यक्ति की आजादी पर हमले का प्रतिरोध, पुरस्कारों, सहूलियतों व अन्य प्रलोभनों के जरिये संस्कृति को समायोजित, नियंत्रित और अनुकूलित करने के समस्त प्रयासों का प्रतिरोध करने के मामले में रचनात्मक पहलकदमी लेने और विरोध संगठित करने में आगे रहा है तथा साम्राज्यवादी युद्धों, राज्य दमन, एएफएसपीए और राजद्रोह जैसे दमनकारी कानूनों, यौन हिंसा व नैतिक पुलिसिंग का रचनात्मक एवं खरा प्रतिवाद, और बिनायक सेन, सीमा आजाद, शीतल साठे एवं जीतन मरांडी की गिरफ्तारियों तथा अफजल गुरु की फांसी आदि का प्रतिवाद करने में भी इसने अग्रणी भूमिका निभाई है।

6. वर्ग चेतना पर पर्दा डालने और सामंती-पूँजीवादी शोषण के पीड़ितों की प्रतिरोध-आधारित एकता को तोड़ने के लिये शासक वर्गों द्वारा अत्यंत व्यवस्थित रूप से प्राक्-पूँजीवादी समाजों में पैदा हुई सामुदायिक और अस्मिता-आधारित एकताओं को जगाया जाता है। संस्कृति के व्यापारीकरण ने लोगों के सांस्कृतिक विकल्पों को फिल्मों, वीडियो, टीवी सीरियलों, संगीत अलबमों आदि तक में सीमित कर दिया है, जो ज्यादातर बाजार अर्थव्यवस्था के मूल्यों, व्यक्तिवाद और हिंसा, जातिवाद एवं लिंग आधारित भेदभाव को बढ़ावा देते हैं। यह प्रवृत्ति परंपरागत धार्मिक और लोक उत्सवों तक में घुस गई है। आजकल तो कॉरपोरेट-प्रायोजित साहित्यिक उत्सव बड़े धूमधाम से मनाये जाते हैं। आजादी की लड़ाई के दौरान या आजादी के ठीक बाद सरकारी मदद से बने स्वायत्त या अर्ध-स्वायत्त संस्थान आज चौमुखे संकट से घिरे हुए हैं और उनमें से कई ने तो कॉरपोरेट घरानों से करीबी सम्बंध बना लिए हैं।

7. जनता की प्रगतिशील संस्कृति के जोशीले और जीवंत पुनरुत्थान के लिए जरूरी हैं ऐसी सांस्कृतिक प्रस्तुति देने वाली टीमों, जो जनता के साथ एकरूप हो सकें और उनके साथ गहन संवाद कायम कर सकें। इस तरह की टीमों ही शहरी व ग्रामीण इलाकों में सांस्कृतिक काम को एक सतत काम के रूप में स्थापित करने और प्रतिक्रिया की तमाम ताकतों के खिलाफ जमीनी स्तर पर सांस्कृतिक प्रतिरोध संगठित करने की कुंजी हैं। यद्यपि हमारे पास बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल में टीमों हैं, लेकिन ऐसी और भी टीमों के

विकास की संभावनाओं का पूरा इस्तेमाल अभी भी नहीं हो पाया है। असम, पंजाब, दिल्ली, छत्तीसगढ़, ओडिशा, आन्ध्रप्रदेश और तमिलनाडु जैसे अनेक अन्य राज्यों में कारगर सांस्कृतिक टीमों के निर्माण की सम्भावना मौजूद है। इन राज्यों के पार्टी संगठनों को इस मामले में जरूरी ध्यान देना होगा।

8. झारखण्ड के सांस्कृतिक कर्मियों द्वारा लिखे गये 'गांव छोड़ब नांही' जैसे गीत आज के संघर्षों के नये एजेण्डों को प्रतिबिम्बित करने वाले हैं जो वस्तुतः कॉरपोरेट लूट तथा भूमि अधिग्रहण के विरुद्ध संघर्षों के जन-गीत बन चुके हैं। ऐसे गीतों के अलावा नुक्कड़ नाटक सांस्कृतिक संवाद के लिए सबसे महत्वपूर्ण साधन हैं। हाल के आंदोलनों के दौरान, मसलन यौन हिंसा के खिलाफ आंदोलन में बहुतेरे छात्र-युवाओं को बड़े उत्साह से नुक्कड़ नाटक करते देखा गया। नये लोगों को जोड़ने और अपनी बात जनता तक पहुंचाने के लिए हमें इस माध्यम का और प्रभावी इस्तेमाल करना होगा। पिछले कुछ वर्षों में हमने देखा कि थियेटर के प्रगतिशील कलाकार व्यापक जनसमुदाय तक प्रभावशाली रूप से पहुंचने के लिये इरोम शर्मिला के जीवन और एएफएसपीए के खिलाफ संघर्ष, यौन हिंसा और महिलाओं की आजादी जैसे विषयों पर अत्यंत सशक्त एकाभिनय की प्रस्तुतियां कर रहे हैं। इन कलाकारों के साथ सघन अंतःक्रिया के साथ क्रांतिकारी सांस्कृतिक संगठक ऐसे रूपों को भी आजमा सकते हैं।

9. वाम-सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वे अत्यंत विविध किस्म के जनान्दोलनों के साथ घनिष्ठ रिश्ता बनायें। इस संदर्भ में जन संस्कृति मंच के फिल्म समूह 'द गुप' का अनुभव काफी उत्साहवर्धक रहा है। इसने फिल्मोत्सवों (अब तक ऐसे 30 उत्सव हो चुके हैं) के जरिये इन आंदोलनों के बारे में जागरूकता और समर्थन बढ़ाया जिसके दौरान इसने जनपक्षधर फिल्मकारों, कलाकारों और कवियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, वाम बुद्धिजीवियों और समाजविज्ञानियों को अपनी ओर आकर्षित किया। 'द गुप' ने वृत्तचित्रों के निर्माण और प्रकाशन का काम भी शुरू किया है। खास बात यह है कि 'द गुप' की सभी पहलकदमियां बिना कॉरपोरेट या सरकारी पैसे के सिर्फ जनता के सहयोग से सफलतापूर्वक चल रही हैं; यह बात तो जन संस्कृति मंच की हर गतिविधि की विशिष्टता है। क्रांतिकारी सांस्कृतिक आंदोलन को जनान्दोलनों का नैतिक समर्थन ही नहीं करना चाहिए, बल्कि उनके साथ एकाकार होने के लिए कला और संस्कृति की जन गोलबंदी की क्षमता को और बढ़ाना चाहिए।



10. तमाम बाधाओं के बावजूद ऐसे कई सक्रिय वाम सांस्कृतिक मंच और व्यक्ति हैं जो अनेक तरीकों से लगातार प्रगतिशील सांस्कृतिक गतिविधियां चलाते रहते हैं। जन संस्कृति मंच (जसम), प्रगतिशील लेखक संघ (प्रलेस), जनवादी लेखक संघ (जलेस), सहमत व कई अन्य संगठन और व्यक्तियों के अलावा राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर पर प्रकाशित होने वाली कई पत्रिकाएं, जो वाम विचारों के विभिन्न रूपों का प्रतिनिधित्व करती हैं, आमतौर पर प्रगतिशील व धर्मनिरपेक्ष विश्व-दृष्टि का प्रचार करती हैं। सांस्कृतिक व राजनीतिक महत्व के विशिष्ट मुद्दों पर ऐसे तमाम बड़े संगठनों को एकजुट करने के कई सफल प्रयास हुए हैं।

11. सभी प्रगतिशील सांस्कृतिक मंचों और व्यक्तियों को एकजुट करने के क्रम में हमें प्रतिवाद/प्रतिरोध की संस्कृति को वाम सांस्कृतिक आंदोलन के प्रमुख आधार के रूप में देखना चाहिए। हाल ही में दिल्ली में हुए जघन्य बलात्कार कांड के बाद कई जगहों पर बहुतेरे लेखक कलाकार सड़कों पर उतरे, जिसमें जन संस्कृति मंच ने हिंदी-उर्दू क्षेत्र में बड़ी भूमिका निभाई। जसम की नाट्य इकाई 'हिरावल' ने इसी घटना पर आधारित नुक्कड़ नाटक 'बेखौफ आजादी' की दिल्ली, पटना एवं अन्य शहरों में कई प्रस्तुतियां कीं। जसम के फिल्म समूह 'द ग्रुप' ने इस वर्ष के सारे फिल्मोत्सवों को महिलाओं की 'बेखौफ आजादी' की थीम को समर्पित किया है। इस आंदोलन के साथ एकजुटता में सिर्फ दिल्ली ही नहीं बल्कि अन्य जगहों पर भी अनेक स्वतंत्र कलाकारों और विभिन्न वाम समूहों के कलाकारों ने सांस्कृतिक संध्याएं आदि आयोजित कीं।

12. एक नई प्रगतिशील चेतना और मुक्तिकामी सौन्दर्यशास्त्र के निर्माण के लिए क्रांतिकारी सांस्कृतिक आंदोलन को समस्त सांस्कृतिक रूपों के साथ प्रयोग करना चाहिए ; स्कूलों, अकादमिक संस्थाओं, कार्यस्थलों, और सामाजिक अंतःक्रिया के सभी संस्थानों तक अपने नेटवर्क को फैला देना चाहिए ; सरकार द्वारा स्थापित स्वायत्त सांस्कृतिक संस्थानों में हस्तक्षेप की नीतियां बनानी चाहिये और रास्ते तलाशने चाहिए ; क्रांतिकारी वाम स्थिति अपनाकर हर समसामयिक सांस्कृतिक विमर्श में हस्तक्षेप करना चाहिए ; सांस्कृतिक भूमंडलीकरण की एकरसता के चलते खतरे में पड़ी लोक कला परंपराओं, जन-भाषाओं एवं बोलियों में विविध प्रगतिशील सांस्कृतिक रचनाओं को बढ़ावा देना चाहिए और उनका विकास करना चाहिए ; और जन-विज्ञान व सांस्कृतिक साक्षरता के लिए और जातीय भेदभाव, पितृसत्तात्मक संस्कृति के विभिन्न रूपों, अंधविश्वासों और सामाजिक बुराइयों के खिलाफ आंदोलन छेड़ देना चाहिए।

13. बाजार द्वारा फैलाई जा रही पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों और जकड़नभरी व्यापक सामंती और पितृसत्तात्मक संस्कृति के खिलाफ प्रबल सांस्कृतिक प्रतिरोध खड़ा करने का जरूरी काम सिर्फ 'सांस्कृतिक संगठनों' पर नहीं छोड़ा जा सकता. बल्कि समग्र पार्टी को ही अपनी कतारों, जनाधार तथा व्यापक समाज में क्रांतिकारी मूल्यों के विरोधी सांस्कृतिक मूल्यों और रिवाजों का प्रतिकार करने और प्रगतिशील सांस्कृतिक मूल्यों का सशक्त आंदोलन खड़ा करने की जिम्मेदारी लेनी होगी. कम्युनिस्ट पार्टी को जाति-भेदभाव व अपनी जाति में ही विवाह की जिद के खिलाफ, झूठी "शान" के नाम पर अपराध (ऑनर क्राइम) और यौन हिंसा के खिलाफ, और अपना जीवनसाथी चुनने से लेकर अन्य मामलों में महिलाओं तथा पुरुषों की स्वायत्तता के लिए, लिंग अथवा यौनिक रूझानों के आधार पर सभी किस्म के भेदभाव के खिलाफ, लड़कियों को संपत्ति देने से इंकार के खिलाफ, दहेज लेने और देने के खिलाफ, पुत्र प्राथमिकता और कन्या भ्रूण गर्भपात आदि के खिलाफ सशक्त सामाजिक आंदोलन खड़ा करने की पहल लेनी होगी.

14. हमारा देश आज जिस उथल-पुथल भरे दौर से गुजर रहा है, वह हमें अपने आकांक्षित ध्येय "सृजन की संस्कृति, प्रतिरोध की संस्कृति, जन संस्कृति!" को अमल में लाने का पर्याप्त अवसर देता है. आइये, हम आज के राजनीतिक कार्यभारों के साथ सांस्कृतिक मोर्चे को और घनिष्ठ एवं रचनात्मक तरीके से जोड़कर विकसित करें और लड़ रहे असंख्य लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ें.

## वर्ग संघर्ष की रणभूमि के रूप में मीडिया

15. "शासक वर्गों के विचार हर युग में शासक विचार होते हैं, यानी जो वर्ग किसी समाज की शासक भौतिक शक्ति होता है, वही साथ-ही-साथ उस समाज की शासक बौद्धिक शक्ति भी होता है. जिस वर्ग के पास भौतिक उत्पादन के साधन होते हैं, उसका साथ-ही-साथ बौद्धिक उत्पादन के साधनों पर भी नियंत्रण होता है, इसलिये सामान्य तौर पर कहीं तो जिनके पास बौद्धिक उत्पादन के साधन नहीं होते, उनके विचार इसके (बौद्धिक उत्पादन के साधनों के -अनु.) मातहत होते हैं ... इसलिए, चूंकि वे एक वर्ग के तौर पर शासक होते हैं ... इसीलिये वे अपने दौर के चिंतकों की हैसियत से, विचारों के उत्पादक होने के नाते, शासन करते हैं, और अपने दौर के विचारों के उत्पादन और वितरण को नियंत्रित करते हैं ; इस तरह उनके विचार उस

युग के शासक विचार होते हैं।” मार्क्स और एंगेल्स द्वारा 1845-46 में जर्मन विचारधारा में लिखित ये पंक्तियां हमारे समय में भी बर्जुआ मीडिया और “संस्कृति उद्योग” की वर्चस्वशाली भूमिका को रेखांकित करती हैं। मगर, आज के “बौद्धिक उत्पादन के साधनों” के मालिकों द्वारा विचारों के “उत्पादन और वितरण पर नियंत्रण” ठीक किस तरीके से किया जा रहा है, उसका निर्धारण मीडिया संस्थानों के मालिकाने, नियंत्रण और उनकी कार्य-पद्धति के साथ-साथ पूंजीवाद के मौजूदा नवउदारवादी चरण की सामान्य प्रवृत्तियों के द्वारा होता है।

16. सूचनाओं, आंकड़ों, मतों और ज्ञान का संग्रह करने, तैयार करने और प्रसारित करने वाले रचित माध्यमों से होने वाले मानवीय संप्रेषण के बतौर परिभाषित मीडिया ने संचार क्रांति द्वारा आरंभ किये गये ‘डिजिटल/वर्चुअल पूंजीवाद’ के दौर में हमारे आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान हासिल कर लिया है। पूरी दुनिया में और खासकर पश्चिम में व हमारे देश में भी हाल के दशकों में “सूचना-मनोरंजन उद्योग” का सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) और रोजगार सृजन में हिस्सा उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है। खेलों को मनोरंजन के उत्पाद में बदलकर प्रसारित करने के चलते टी-20 क्रिकेट जैसे खेलों के नये रूपों का जन्म हुआ है, जिनमें बहुत ज्यादा पैसा, घोटाला और खुद खेल का भ्रष्टाचार शामिल है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने धर्म, अंधविश्वास और नीमहकीमी को भी बड़े पैमाने पर तैयार माल में तब्दील कर दिया है और कई चैनल इन्हीं चीजों को समर्पित हैं।

17. “नयी विश्व व्यवस्था” कायम करने में वित्तीय पूंजी के शासन को वैध ठहराने वाली शक्ति के रूप में मीडिया की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका हो गई है। अप्रैल 2002 में वेनेजुएला में राष्ट्रपति शावेज के तख्ता-पलट की कोशिशों में निजी कॉरपोरेट मीडिया की बड़ी भूमिका थी। इटली में बर्लुस्कोनी और इंग्लैण्ड में मर्डोक के राजनीतिक दांवपेंच सबको पता हैं। मगर हमारे लिए मीडिया बड़े सामाजिक टकरावों का— शासक वर्गों के भीतर के टकरावों और शासक वर्ग व जनता के बीच के टकरावों समेत— मैदान है और इसीलिए यह विचारधारात्मक-राजनीतिक वर्चस्व के लिए संघर्ष का क्षेत्र है।

18. पिछले दो दशकों में भारत में मीडिया के सभी क्षेत्रों में कॉरपोरेटों की पैठ बढ़ने से वृद्धि दर्ज हुई है। 2011 के आंकड़ों के अनुसार 14 करोड़ 60 लाख घरों में टीवी हैं जिनमें 6,232 से ज्यादा चैनलों को देखा जाता है, 82,000 समाचार पत्र हैं, जिनके कुल 18 करोड़ 19 लाख 10 हजार पाठक हैं, लगभग 13.2 करोड़ इन्टरनेट उपभोक्ता हैं (यह मानकर कि एक कनेक्शन के कई उपभोक्ता होते हैं)। हमारा देश अमेरिका और चीन के बाद तीसरा

सबसे बड़ा टीवी बाजार है, लेकिन टेलिविजन अभी 60 प्रतिशत घरों और 45 प्रतिशत जनसंख्या तक ही पहुंचा है, जिसका मतलब है कि अभी भी विस्तार की बहुत सी संभावनाएं हैं। 2011 में टेलिविजन, अखबार और पत्रिकाओं की कुल कीमत क्रमशः 329 अरब रुपये, 197 अरब रुपये और 13 अरब रुपये आंकी गई थी। स्मार्टफोन, लैपटॉप और टैबलेट के जरिये सचल इंटरनेट का इस्तेमाल तेजी से विकसित होते हुए नवीनतम क्षेत्र के रूप में सामने आया है।

19. हमारे देश में और दुनिया भर में भी प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एकाधिकारी नियंत्रण और मालिकाने के तहत तेजी से जा रहा है। दुनिया भर में इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक स्पेक्ट्रम के जारी निजीकरण के चलते इसमें तेजी आई है, जो संचार-क्रांति पर कॉरपोरेट कब्जे का ही लक्षण है। पश्चिमी और उसमें भी अधिकांश अमेरिकी कॉमकास्ट/एनबीसी यूनिवर्सल, वाल्ट डिजनी और टाइम वार्नर जैसे बड़े समूहों के जैसे ही भारत में भी स्टार टीवी इंडिया, टीवी 18, एनडीटीवी, सोनी, जी ग्रुप जैसे समूह हैं। इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया पर नियंत्रण रखने वाले अन्य बड़े समूह हैं- टाइम्स ऑफ इंडिया ग्रुप, हिंदुस्तान टाइम्स ग्रुप, इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप, द हिंदू ग्रुप, आनंद बाजार पत्रिका ग्रुप, मलयाला मनोरमा ग्रुप, सहारा ग्रुप, सन ग्रुप, भास्कर ग्रुप और जागरण ग्रुप। टाटा, गोयनका, बिड़ला, अंबानी आदि ने मीडिया समूहों में काफी पूँजी लगा रखी है और ये समूह कॉरपोरेट ताकत के राजनीतिक अंग के बतौर काम करते हैं और भारतीय अर्थव्यवस्था के और अधिक उदारीकरण के लिए, जैसे खुदरा व्यापार में एफडीआई आदि के लिए, माहौल बनाते हैं और अपने संरक्षकों के कॉरपोरेट अपराधों पर पर्दा डालते हैं।

20. हम सभी तरह के मीडिया पर चंद घरानों के मालिकाने और क्रॉस मीडिया होल्डिंग (जिसमें टेलिविजन, रेडियो चैनल और विभिन्न भाषाओं के अखबारों पर एक ही समूह का मालिकाना होता है, जो कई बार वितरण के साधनों मसलन केबल और इंटरनेट नेटवर्क का भी मालिक होता है) का विरोध करते हैं क्योंकि बहुलता और विचारों की विविधता के अभाव में लोकतंत्र की कल्पना नहीं की जा सकती। हम प्रगतिशील कानूनों और देश में मीडिया को नियंत्रित करने वाली संवैधानिक संस्थाओं के लिए उपयुक्त नियमों की मांग करते हैं। साथ ही हम प्रसारण क्षेत्र में 74 प्रतिशत एफडीआई के हाल के निर्णय का विरोध करते हैं।

21. राजनेताओं के इलेक्ट्रॉनिक/प्रिंट मीडिया कंपनियों के मालिकाने या नियंत्रण की भी प्रवृत्ति तेजी से बढ़ी है। क्योंकि मुख्य धारा का ज्यादातर मीडिया विज्ञापनों से होने वाली आय पर निर्भर है (कुछ अखबार तो 80

प्रतिशत जगह विज्ञापनों के लिए रखते हैं) इसलिये कॉरपोरेट कम्पनियों और राजनेताओं, दोनों के द्वारा मीडिया को घूस देने या प्रभावित करने के लिए विज्ञापन देने का रास्ता अपनाना बहुत आम है। बहुत से मुख्यमंत्री जनता के पैसे को बड़े पैमाने पर मीडिया प्रबंधन पर खर्च करने के लिए पिछले दिनों चर्चा में रहे हैं। राडिया टेप विवाद ने साफ तौर पर दिखा दिया कि राजनेताओं और उद्योगपतियों के बीच कई बार मीडिया के प्रभावशाली लोगों की मध्यस्थता से संबंध बनते हैं, जिसके फलस्वरूप मीडिया-कॉरपोरेट-राजनेता गठजोड़ का उदय हुआ है। ऐसी स्थिति में मीडिया क्षेत्र में कॉरपोरेट और राजनीतिक अपराधों एवं भ्रष्टाचार का प्रवेश होना अथवा अनेक तरीकों से मीडिया के दुरुपयोग में बदल जाना बहुत स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए कैंग द्वारा उजागर किये गये 1 लाख 86 हजार करोड़ रुपयों के कोयला आवंटन घोटाले में दैनिक भास्कर को चलाने वाली डीबी कार्प. लि., प्रभात खबर की मालिक उषा मार्टिन लि. जैसी कंपनियों के नाम हैं। कोई भी गठजोड़ आंतरिक संघर्ष से मुक्त नहीं है, कई बार तो एक दूसरे को ब्लैकमेल करने और उगाही करने की घटनाएं भी प्रकाश में आती हैं, जैसा कि अभी हाल ही में जी ग्रुप और जिंदल के बीच हुआ।

22. प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर हावी कॉरपोरेट और राजनीतिक प्रभाव के चलते पेड न्यूज, गढ़े गये समाचार, विकृत सूचनाओं, आधा सच और कई बहुत महत्वपूर्ण खबरों का दबाया जाना बहुत आम है। 2010 में पेड न्यूज की परिघटना पर प्रेस काउन्सिल ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की है और 2013 में प्रेस काउन्सिल की एक टीम ने बिहार सरकार पर प्रेस की आवाज दबाने और बांह मरोड़ने का आरोप लगाया है। गुजरात में मुसलमानों के जनसंहार और कंधमाल (उड़ीसा) में ईसाइयों के जनसंहार में भगवा समर्थक मीडिया की भूमिका कोई छोटी-मोटी नहीं थी। आतंक-विरोधी जांच और गिरफ्तारियों के प्रसारण आदि के जरिये प्रभावशाली मीडिया बड़ी तादाद में निरपराध मुस्लिम और कश्मीरी नौजवानों को निशाना बनाने की पुलिस और जांच एजेंसियों की परियोजना में भागीदार बन जाता है। लगभग सारा ही कॉरपोरेट मीडिया अपनी रिपोर्टिंग, और समाचारों के विश्लेषण में प्रभुत्वशाली वर्ग, जाति और लिंग के पक्ष में अपने पूर्वाग्रहों को छिपा नहीं पाता। ये सिर्फ पड़ोसी देशों के खिलाफ ही नहीं दूसरे कमजोर देशों के खिलाफ भी अंधराष्ट्रवाद के औजार बनते हैं। कमजोर देशों के बारे में मीडिया का ऐसा रुख हाल ही में मालदीव की सरकार के खिलाफ देखने को मिला जब वहां की सरकार ने माले में हवाई अड्डा बनाने के भारतीय कंपनी जीएमआर के साथ करार को बिल्कुल

तर्कसंगत आधार पर समाप्त कर दिया (कुछ चैनलों ने तो कड़ी दंडात्मक कार्रवाई का सुझाव भी पेश किया). शासकवर्गों की राजनीति की गुलामी मजदूर वर्ग की हड़तालों और खासकर क्रांतिकारी ताकतों के नेतृत्व वाले संगठित आंदोलनों के खिलाफ मीडिया के सूक्ष्म राजनीतिक दुष्प्रचार में और साथ ही लोकप्रिय और बड़े आंदोलनों पर चुप्पी साधने की साजिश के जरिये ज्वलंत रूप से अभिव्यक्त होती है, जबकि अराजक सैन्यवादी कार्रवाइयों को जाबूझकर सनसनी फैलाने वाले अंदाज में पेश किया जाता है.

23. राजनीतिक मकसद और पूर्वाग्रहों के अलावा पूर्णतः व्यापारिक हित भी कई बार मीडिया के एक हिस्से से हर तरह के गलत काम करवाते हैं. टीआरपी से संचालित इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में हिंसक दृश्यों व अपराध कथाओं की विस्तृत रिपोर्टिंग आदि की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है. मीडिया के दुरुपयोग की ऐसी भी घटनाएं हुई हैं, जिनमें तमाम सनसनीखेज घटनाओं को मीडिया ने ही पैदा किया, जबकि वास्तव में वे घटित ही नहीं हुईं. जुलाई 2012 में यौन हमलों की दो घटिया वारदातों को टीआरपी के भूखे पत्रकारों/चैनलों के द्वारा करवाया गया या उनका उपयोग किया गया. गुवाहाटी में न्यूज लाइव चैनल के पत्रकारों ने भीड़ द्वारा एक लड़की के यौन उत्पीड़न का वीडियो बनाया. कुछ लोगों का बयान है कि उन पत्रकारों ने सनसनीखेज न्यूज की खोज में इस भीषण कांड के लिए लोगों को उकसाया था. इसके कुछ ही दिनों बाद मंगलौर में एक स्थानीय चैनल के पत्रकार ने अपने चैनल की रेटिंग को आगे बढ़ाने के लिए हिंदू जागरण वेदिका द्वारा एक बर्थ डे पार्टी पर हमला करवाया. इस प्रकरण को कवर करने वाले टीवी रिपोर्टर नवीन सुरुन्जे को घटना को भड़काने के झूठे आरोप में जेल में डाल दिया गया है, हम उसकी तत्काल रिहाई की मांग करते हैं. हम प्रेस काउन्सिल ऑफ इंडिया से अनुरोध करते हैं कि वे ऐसे जरूरी कदम उठायें जिनसे मीडिया-नैतिकता का विकास हो और पत्रकार ज्यादा जवाबदेह बन सकें.

24. समाचार चैनलों की तरह ही सामान्य मनोरंजन चैनलों का तेजी से बढ़ता टेलिविजन नेटवर्क भी कई तरीकों से सांस्कृतिक प्रदूषण फैलाने में अपनी भूमिका निभाता है. जिसमें सबसे घातक है, हिंदी समेत दूसरी स्थानीय भाषाओं में प्रसारित होने वाले सीरियल, जो 'नई पितृसत्ता' को नवउदारवादी दौर के अनुरूप पैकेजिंग करके परोसते हैं, पुराने सामंती मूल्यों और परंपराओं को नये बाजार आधारित समाज के अनुकूल बनाकर पेश करते हैं. नॉन-फिक्शन सीरियल बढ़ते उपभोक्तानवादी मध्यवर्ग की दांव लगाने की आकांक्षा और तृष्णा पर आधारित होते हैं, यहां तक कि विज्ञापन भी ऐसी चीजों को अवसर

उधार लेकर खरीदने की तीव्र इच्छा पैदा करते हैं, जो या तो अनुपयोगी होती हैं, या फिर पहुंच से बाहर होती हैं।

25. लेकिन मुख्य धारा के मीडिया में भी बहुत से अंतर्विरोधी दबाव होते हैं जो उनमें दरार पैदा करते हैं और नैतिक, प्रतिबद्ध और जुझारू पत्रकारिता के लिये जगह बनाते हैं और सत्ताधारियों की आलोचना करने वाले क्रांतिकारी विचारों को अवसर देते हैं। कॉरपोरेटीकरण, संपादकीय टीम को प्रबंधकीय टीम के मातहत कर दिये जाने बावजूद न्यूज डेस्क, न्यूजरूम और सीधे प्रसारणों के प्रभारियों की चेतना को पूरी तरह कुचला नहीं जा सकता। इसलिए व्यवस्था के विरोध में निर्भीक खोजी पत्रकारिता की संभावना हमेशा बनी रहती है। चाहे वह गुजरात जनसंहार रहा हो या विभिन्न घोटाले, ऐसी एक जगह हर समय मौजूद रही है, जिसका ईमानदार पत्रकारों ने व्यक्तिगत खतरा मोल लेते हुए इस्तेमाल किया और सच्चाई को सामने लाये।

26. प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन और दिल्ली में गैंगरेप के बाद उमड़े आंदोलन का कवरेज उल्लेखनीय था। इन आंदोलनों को प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के सीधे प्रसारणों व पैनल चर्चाओं आदि में सहानुभूतिपूर्ण कवरेज मिला। लेकिन कुछ अपवादों को छोड़ दें तो ज्यादातर यह कवरेज इन आंदोलनों के कुछ नारों तक ही सिमट कर रह गया, भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन में यह जनलोकपाल और बलात्कार-विरोधी आंदोलन में यह 'मृत्युदंड' पर केंद्रित रहा, जिससे कॉरपोरेट लूट और बलात्कार संस्कृति के बारे में चर्चा नहीं हो सकी। ज्यादातर इन आंदोलनों का मीडिया कवरेज इस तरह का प्रयास था कि इन आंदोलनों को तात्कालिक, एक मुद्दा-आधारित और अराजनीतिक बनाये रखा जाये। बलात्कार विरोधी कानून के मामले में मीडिया ने काफी नुकसान पहुंचाने वाली भूमिका निभाई और झूठमूठ यह बात फैलाई कि सहमति से सेक्स की उम्र 'घटाई' जा रही है, ताकि सरकार द्वारा सहमति से सेक्स की उम्र को बढ़ाने के कदम के पक्ष में माहौल तैयार किया जा सके।

27. इसके अलावा, आधुनिक मीडिया हमारे ज्ञान को व्यापक रूप से समृद्ध कर सकता है और बदलती स्थितियों में लगभग तुरंत ही कदम उठाने की क्षमता भी हमें दे सकता है। फेसबुक और ट्विटर जैसी सोशल नेटवर्किंग साइटों का इस्तेमाल भ्रष्टाचारियों को बेनकाब करने और सियेटल से लेकर अरब आंदोलनों व वाल स्ट्रीट पर कब्जा करो आंदोलनों तक तेजी से प्रदर्शनकारियों को सूचना देने और उन्हें इकट्ठा करने में हुआ है। ओपेन सोर्स आंदोलन, विकिपीडिया और विकिलीक्स ने व्यक्तियों और संगठनों के पास राजनीतिक

विमर्श और लोकतांत्रिक जनमीडिया के विकास के लिए पर्याप्त मुफ्त जगह मुहैया कराई है। हम अभी भी पार्टी की वेबसाइट, जन संगठनों और कॉमरेडों के ब्लॉग और सोशल नेटवर्क साइटों पर उनके खातों के जरिये ऐसी जगहों के इस्तेमाल के प्राथमिक चरण में हैं। पार्टी की वेब-साइट की गुणवत्ता सुधारने पर तत्काल ध्यान देते हुये हमें तमाम तरह के सोशल मीडिया का उपयोग करने के लिए संगठित तरीके से सामूहिक प्रयास करने की जरूरत है।

28. पूरी दुनिया की सरकारें सोशल नेटवर्क साइटों और इंटरनेट की लोकतांत्रिक संभावनाओं और इसकी मारक क्षमता को नष्ट करने के लिए सब कुछ कर रही हैं। वे सूचना तंत्र पर अपनी अत्यधिक निर्भरता के चलते चिंतित हैं, क्योंकि 'हैक्टिविस्टों' के चलते उनके विनाश का एक नया मोर्चा ही खुल गया है। हैक्टिविस्ट ऐसे सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता हैं, जो वेबसाइटों को हैक करने के अपने हुनर का इस्तेमाल सत्ता के खिलाफ जनता के पक्ष में करते हैं। वॉल स्ट्रीट पर कब्जा करो आंदोलन शुरू करने वालों में से एक अमेरिका का 'एनॉनिमस' ऐसे ही कार्यकर्ताओं का एक समूह है।

29. हमारे देश में भी केंद्र और राज्य सरकारें आईटी कानून की धारा 66-ए का इस्तेमाल अभिव्यक्ति की आजादी को कुचलने के लिए कर रही हैं। हाल ही में पश्चिम बंगाल में विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर को एक कार्टून फॉरवर्ड करने के लिए पीटा गया और गिरफ्तार किया गया और महाराष्ट्र में बाल ठाकरे की मृत्यु के बाद एक एकदम उचित टिप्पणी करने और उस टिप्पणी को पसंद करने वाली दो लड़कियों को गिरफ्तार किया गया। हम 66-ए को तत्काल समाप्त करने की लोकप्रिय मांग का समर्थन करते हैं और इंटरनेट आजादी को नियंत्रित करने की कोशिशों का विरोध करते हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हम विकिलीक्स की प्रमुख हस्ती जूलियन असांजे, जिन्होंने लंदन में इक्वेडोर के दूतावास में शरण ले रखी है, विकिलीक्स के व्हिसल-ब्लोअर (गोपनीय बातों का खुलासा करने वाले) ब्रैडले मैनिंग, जो अमेरिका के युद्ध-अपराधों एवं अन्य कुकर्मों का भंडाफोड़ कर रहे हैं और आरोन स्वार्ट्ज, जो सूचना के मुफ्त वितरण के लिए अभियान चलाते थे और जिन्होंने संभवतः अमेरिकी पुलिस के दबाव में आत्महत्या कर ली, आदि को अमेरिका द्वारा निशाना बनाये जाने की निंदा करते हैं।

30. प्रभावशाली मीडिया के कॉरपोरेट नियंत्रित होने के बावजूद इस क्षेत्र में और बड़ा हस्तक्षेप न सिर्फ संभव है, बल्कि जरूरी भी है। मीडिया के सभी क्षेत्रों में संगठित, व्यवस्थित और सतत हस्तक्षेप के लिए जरूरी है कि राष्ट्रीय राजधानी और राज्यों की राजधानियों एवं अन्य संभावित जगहों पर



पार्टी के मीडिया सेलों का गठन किया जाये और उन्हें सक्रिय किया जाये। प्रभावी संप्रेषण के लिए आधुनिक मीडिया का बेहतर इस्तेमाल और पार्टी की विचारधारात्मक-राजनीतिक स्थिति व चलाये जा रहे तरह-तरह के संघर्षों के बेहतर प्रसार के लिए पार्टी के मुखपत्रों व प्रकाशनों के नेटवर्क को बेहतर बनाना और मुख्य धारा के मीडिया में व्यवस्थित हस्तक्षेप करना दोनों बातों को पार्टी के एकीकृत रुख के जुड़वां पहलुओं के रूप में देखा जाना चाहिए।





भाकपा(माले) के 9<sup>वें</sup> महाधिवेशन  
बिरसा नगर (रांची)  
2-6 अप्रैल 2013  
द्वारा पारित

## प्रस्ताव

मूल्य : रु. 20

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी)  
की केन्द्रीय कमेटी के लिए  
प्रभात कुमार द्वारा प्रकाशित  
चारु भवन  
यू 90, शकरपुर  
दिल्ली - 110092  
फोन: 91-11-22521067  
फैक्स: 91-11-22442790  
ई-मेल: [mail@cpiml.org](mailto:mail@cpiml.org)  
वेब-साइट: <http://www.cpiml.org/>